सूची पत्र.

पुस्तक को दृष्टिगोचर करत्यां पाठक जनको किसी सम्बंध तथा शब्द तथा अर्थकी शका पडे तो पहले अशुद्धि शुद्धि पत्र को देख लेवें.

जाहेर खबर.

(१) सनातन जैन धर्मावलम्बी सज्जनोंको विदित हो कि, शहर अहमदावाद (देश गुजरात)में जैन धर्मकी उन्नति के लिये "जैन हितेच्छु" ऑफीस आज सात वर्षसे खुली गइ है इसमें जैन धर्मके पुस्तकों रचनेका, रचानेका, और अचेत जलसे छपनेका कार्य होता है और पवित्र जैन धर्मका फैलाव के लिये प्रयत्न किया जाता है

(२) इस ऑफिस तर्फसे "जैन हितेच्छु" नामका मासिक पत्र प्रतिमास नया नया उपदेश, जैन सूत्रोंका सार, ससार नीतिका उपदेश, जैन समाचार इत्यादि बावतों से भरपूर छपा जाता है. प्रतिमास ३६ पृष्टका मासिक पत्रका वार्षिक मूल्य रु १) और पोष्ट खर्च रु. ०। है. नयी सालकी भेट तरीके "धर्मतत्व संग्रह" नामका रु. १) कीमतका पुस्तक मुफत में देनेका ठहराव किया गया है.

(३) इस "जैन हितेच्छु" ऑफिसकी पास निराश्रीत "जैन फंड" है, कि जिस्का व्यय दुःखी जैनोंको गुप्त मदद देनेमे किया जाता है. जिस्की मरजी होवे सो इस फंडमे यथाशक्ति रकम भेजे. पहोंच दी जायगी.

(४) यदि कोइ भाइकी इच्छा नये पुस्तक रचानेकी होवे तो "जैन हितेच्छु" ऑफिसको लीखे. कोइ पुस्तक कीसी महात्मा का रचा हुआ किंवा किसी विद्वानका रचा हुआ होवे तो "जैन हितेच्छु" ऑफिसको भेजनेसे शुद्ध करके छापनेका काम किया जायगा.

(५) जैन शालाओंके लिये किंवा अन्यथा बांटनेके लिये पुस्तको चाहिये तो "जैन हितेच्छु" ओफिसमें लिखनेसे मीलेंगे. सब जातके पुस्तकों इस ऑफीसमें मीलते हैं.

(६) "जैन हितेच्छु" ऑफिस द्वारा निचे लीखे हुए पुस्तकों आजतक छपे गये हैं.—

शास्त्रीमें.

१ सम्यक्त्व सूर्योदय जैन. रु. १)

२ "सम्यक्त्व" अथवा "धर्मका दरवाजा" किमत रु ०।. (सम्यक्त्व और मित्यात्वका स्वरुप, जैन और अन्य मतोंके दृष्टांत और न्यायसे अच्छी तराहसे समझाये गये है. धर्मका और आत्मज्ञानका उपदेश अच्छा किया गया है.)

३ आलोयणा (अति शुद्ध प्रत) ०--२--०

४ नित्य स्मरण (सामायिक, स्तवनों, अणुपूर्वि, साधुवंदना इत्यादि सहित) विना मूल्य. (पोष्ट खर्च ०)०॥ भेजना)

५ धर्मतत्व संग्रह. (दश विधि धर्म का विस्तार पूर्वक उपदेश हिंदीमें किया गया है. बहुत उत्तम पुस्तक है.) मूल्य रु. १)

गुजरातीमें.

१ आलोयणा ०)=

२ धर्मतत्वसंग्रह १)

३ बार व्रत ०)=, १०० प्रतके = ८)

४ हित शिक्षा (सर्व धर्मके लिये अत्यंत उपयोगी पुस्तक गायकवाड सरकारने मंजुर किया है. १२००० प्रत खप गइ है.) मूल्य रु. ०। १० प्रतका १॥

५ सती दमयती. (सरकारने मंजुर की है) ०--६--० पक्कापुंठा०॥

६ सदुपदेशमाळा (१२ नीतिकी रसमयी वार्त्ताओ) रु ८॥

७ मधुमक्षिका ०।

८ आवश्यक भावार्थ प्रकाश (प्रातिक्रमण अर्थ और टीका सहित.) रु ०॥

पत्र व्यवहारः—"जैन हितेच्छु" ऑफिसका मेनेजर
सारंगपुर—अहमदाबाद् (गुजरात)

भूमिका.

सत्य धर्माभिलासी विद्वज्जनों को विदित हो कि—इस घोर कलिकाल में विशेष करके मतियों की सम्मति न होनेसे और पूर्व की अपेक्षा प्रीति के कम होजाने से अर्थात् परस्पर विरोध होने के कारण, अनेक प्रकार के मत मतान्तरों का प्रचार हो रहा है; जिसको देख कर विद्वान् पुरुष आत्मार्थी निष्पक्षदृष्टिवाले कुछ शोक सा मानकर बैठ रहते हैं. परन्तु इतना तो विचारना ही पड़ता है कि इस मनुष्य लोक में दो प्रकार के मनुष्य हैं, (१) आर्य्य और (२) अनार्य्य. अनार्य्यों का तो कहना ही क्या है? जो आर्य्य हैं उनमें भी दो प्रकार के मत हैं: (१) आस्तिक, और (२) नास्तिक. "आस्तिक" उसको कहते हैं "जो होते पदार्थ को होता कहे"; अर्थात्—

१. सर्वज्ञ-सर्वदर्शी-निष्कलंक-निष्प्रयोजन-शुद्ध चेतन "परमेश्वर-परमात्मा" है;

२. चेतना-लक्षण, सोपयोगी, सुख दुःखके वेदक (अर्थात् जाननेवाले) अनन्त 'जीव' भी हैं;

३. रूपी (रूपवाले) सर्व पदार्थोंका उपादान कारण परमाणु आदिक "जड़" भी हैं;

४. पुण्य-पाप रूप "कर्म" भी है, तिसका "फल" भी है;

५. "लोक"-परलोक"-"नर्क"-"देवलोक" भी है;

६. "बंध" और "मोक्ष" भी है;

७. "धर्मावतार" तीर्थंकर जिनेश्वर देव भी हैं; "धर्म" भी है; और "धर्मोपदेशक" भी हैं;

८. "कर्मावतार" बलदेव-वासुदेव भी हैं.

इत्यादिक ऊपर लिखे पदार्थों को 'अस्ति' कहे सो "आस्तिक", और जो 'नास्ति'

कहे सो "नास्तिक"; यथा [१] परमेश्वर नहीं, [२] जीव नहीं, [३] उपादान कारण परमाणु नहीं, [४] पुण्य-पाप नहीं, [५] लोक-परलोक-नर्क-स्वर्ग-नहीं, [६] बंध-मोक्ष नहीं, [७] धर्मावतार तीर्थंकर जिनेश्वर देव नहीं, धर्म नहीं, धर्मोपदेशक नहीं, और [८] कर्मावतार बलदेव-वासुदेव नहीं. यह चिह्न नास्तिकों के हैं.

यथा पाणिनीय अपने सूत्रमें यह कहता है:—"परलोकोऽस्ति मतिर्यस्यास्तीति आस्तिकः" और "परलोको नास्ति मतिर्यस्यास्तीति नास्तिकः"

परन्तु यह आस्तिक-नास्तिकपन नहीं है, जैसे कई एक अल्पज्ञ जन कह देतेहैं कि, "जो हमारे माने हुए मत को तथा शास्त्र को माने सो आस्तिक, और जो न माने सो नास्तिक". यह आस्तिक और नास्तिक के भेद नहीं हैं; भला! यों तो सब ही कह देंगे कि, जो हमारे मत को स्विकार न करे सो नास्ति-

क. यह आस्तिक-नास्तिकपन क्या हुआ ?
यह तो झगडा ही हुआ !

बस ! नास्तिकों की बात तो अलग रहेने दो. अब आस्तिकों में भी बहुत मत हैं: परन्तु विचारदृष्टि से देखा जावे तो आस्तिकों में दो मत की प्रवृत्ति बहुत प्रसिद्ध है, (१) जैन और (२) वैदिक. क्योंकि आर्य्य लोगों में कई शाखे जैनशास्त्रों को मानती हैं, और बहुत शाखें वेदों को मानती हैं, अर्थात् जैनशास्त्रों के माननेवालों में कई मत हैं, और वैदिक मतानुयायीओं में तो बहुत ही मतभेद हैं.

अब विद्वान पुरुषों को विचारणीय यह है कि, इन पूर्वोक्त दोनो में क्या २ भेद हैं ? वास्तव में तो जो अच्छी २ बातें हैं उनको तो सब ही विद्वान प्रमाणिक समझते हैं. और भेद भी हैं; परन्तु सब से बडा भेद तो जैन और वेद में ईश्वर कर्त्ता-अकर्त्ताके वि-

पय में है. यथा कईएक मत जैन, बौध, जै-
मिनी, मीमांसा, कपिल, सांख्य आदि ईश्वर
को कर्त्ता नहीं मानते हैं; और वैदिक, वेद-
व्यास, गौतमन्याय, ब्राह्मण, वैष्णव, शैव;
आदिक ईश्वर को कर्त्ता मानते हैं.

अब ईश्वर के गुण, और ईश्वर का
कर्त्ता होना अथवा न होना, इसका निश्चय
करने को, और कुछ मुक्ति के विषय में स्व:
मतपरमत के मतान्तर का संक्षेप मात्र कथन
करने के लिये "मिथ्यात्व तिमिर नाशक"
नाम ग्रंथ बनाने की इच्छा हुई. इसमें जो
कुछ बुद्धि की मन्दता से न्यूनाधिक वा विप-
रित लिखा जावे तो सुज्ञ जन कृपापूर्वक उसे
सुधार लेवें. ऐसे सज्जन पुरुषों का बडा ही
उपकार समझा जावेगा.

यह ग्रंथ आद्योपान्त विचारपूर्वक नि-
ष्पक्षपात दृष्टि सें (*With Unprejudiced Mind*)
अवलोकन करनेवाले श्रेष्ठ पुरुषों कों मिथ्या
भ्रम रूप रोगके विनाश करनेके लिये औष-

र्थ रूप उपकारी होगा.

इस ग्रंथ में ईश्वरको कर्त्ता अकर्त्ता मानने के विषय में १५ प्रश्नोत्तर हैं; जिनमें ईश्वर को कर्त्ता मानने में चार दोष दिखाये गये हैं, और कर्म को कर्त्ता मानने के विषय में पदार्थज्ञान अर्थात् जीवका और पुद्गल का स्वरुप संक्षेप मात्र युक्तियों से स्पष्ट रीति से सिद्ध किया गया है. और जो वेदानुयायी पण्डित ब्राह्मण, वैष्णव आदिक हैं वह तो आवागमन से रहित होने को मोक्ष मानते हैं; परन्तु जो नवीन वेदानुयायी 'दयानन्दी' वर्ग हैं वह मोक्ष को भी आवागमन में ही दाखिल करते हैं. इस विषय का भी यथामति युक्तियों द्वारा खण्डन किया गया है. इसके अतिरिक्त, यत्किञ्चित् वेदान्ती अद्वैतवादी नास्तिकों के विषय में २० प्रश्नोत्तर हैं; जिनमें उनही के ग्रंथानुसार द्वैतभाव और आस्तिकता सिद्ध की गई है.

(श्री परमेष्ठिने नमः)

श्री

सम्यक्त्व सूर्योदय जैन.

अर्थात्

मिथ्यात्व तिमिरनाशक.

आरिया (दयानन्दी):—तुम ईश्वर को मानते हो वा नहीं ?

जैनीः—हां ! मानते हैं.

आरियाः—तुम सुनी सुनाई युक्ति से मानते हो वा तुमारे खास मत में अर्थात् किसी मूल सूत्र में भी लिखा है ?

जैनीः—मूल सूत्र में भी लिखा है.

आरियाः—सूत्रों के नाम ?

जैनीः—(१) आचाराङ्गजी, (२) समवायाङ्गजी, (३) भगवतीजी.

आरियाः—इन पूर्वोक्त सूत्रो में ईश्वर

को किस प्रकार से माना है?

जैनीः—श्रीमत् आचाराङ्गजी के अध्ययन पांचवें, उद्देशे छठे के अन्त में एसा पाठ है:—

गाथा.

"न काऊ, न रूहे, न संगे, न इत्थी, न पुरुसे, न अन्नहा परिणे, सन्ने, उवमाण विजाइ, अरुवी सत्ता, अपय सपय नत्थी, न सद्दे, न रूवे, न गंधे, न रसे, न फासे, इच्चे तावती तिबेमि"

जिसका अर्थ यह है कि, मुक्त रूप परमात्मा अर्थात् सिद्ध जिसको (न काऊ) काय नहीं अर्थात् निराकार, (न रूहे) जन्म मरण से रहित अर्थात् अजर अमर, (न संगे) राग द्वेषादि कर्म का संग रहित अर्थात् वीतराग सदैव एक स्वरूपी आनंद रूप, (न इत्थी न पुरूसे) न स्त्री, और न पुरुष उपलक्षण से, न क्लीब,(न अन्नहा परिणे) न-

हीं है जिसकी अन्यथा प्रज्ञा अर्थात् विस्मृति नहीं,-अल्पज्ञ नहीं, (सन्ने) ज्ञानसंज्ञा अर्थात् केवलज्ञानी सर्वज्ञ, (उवमाण विजाइ) उपमा न विद्यते अर्थात् इस संसार में कोइ ऐसी वस्तु नहीं कि जिसकी उपमा ईश्वर को दी जावे, (अरुवीसत्ता) अरूपीपन, (अपय सपयनत्थी) स्थावर जंगम अवस्था विशेष नत्थी, (न सद्दे) शब्द नहीं, (न रूवे) कोइ रूप विशेष नहीं अर्थात् श्याम, श्वेत आदि वर्ण नहीं, (न गन्धे) गन्धि नहीं, (न रसे) मधु, कटु आदि रस नहीं, (न फासे) शीतोष्णादिक स्पर्श नहीं, (इच्चे) इति, (तावती) इत्यावत, (त्तिबेमि) ब्रवीमि=कहता हुं.

आरियाः—यह महिमा तो मुक्त पद की कही है, ईश्वरकी नहीं.

जैनीः—अरे भोले! मुक्त है सो ईश्वर है, और ईश्वर है सो मुक्त है.

इस स्थानमें मुक्त नाम ईश्वर का ही है.

क्यों कि ईश्वर नाम तो और ऐश्वर्य्य वालों-
का भी होता है, परन्तु खास नाम ईश्वर का
मुक्त ही ठीक है; जैसे कि स्वामी दयानन्द
ने भी "सत्यार्थ प्रकाश" (संवत १९५४ के
छपे हुए) समुल्लास प्रथम पृष्ठ १६ मी
पंक्ति नीचे ३ में ईश्वरका नाम मुक्त लिखा
हैं; इसीको जैन मत में सिद्ध पद कहते हैं.
और भी बहुत से ग्रंथों में ईश्वर की ऐसे ही
स्तुति की गई है; जैसे कि मानतुङ्गाचार्य्य कृत
"भक्तामर स्तोत्र" काव्य २४:—

श्लोक.

त्वामव्ययं विभु मचिन्त्य मसंख्य मा-
द्यं। ब्रह्माण मीश्वर मनन्त मनंगकेतुम्। यो-
गीश्वरं विदितयोग मनेकमेकं। ज्ञानस्वरुप म-
मलं प्रवदन्ति सन्तः॥ १॥

इस उल्लिखित श्लोक का अर्थ:-हे प्रभो!
सन्तजन आप को एसा कहते हैं:-अव्यय-
म्=अविनाशी; विभुम्=सब शक्तिमान्; अ-

चिन्त्य; असंख्य; आद्यं अर्थात् सब से प्रथम जहांतक बुद्धि पहुंचावें तुम्हें पहिले ही पावें अर्थात् अनादि; ब्रह्मा ईश्वर अर्थात् ज्ञान आदि ऐश्वर्य्य का धारक, सब से श्रेष्ठ अर्थात् सब से उच्च पदवाला; अनन्तम् जिसका अन्त नहीं; अनंगकेतु-कामदेव-विकारबुद्धिके प्रकाश रुपी सूर्य्य को ढकने वाला केतु रुप जीस्का ज्ञान है; योगीश्वरम्; विदित हुआ है योग स्वरुप जीनकु; अनेकमेकम् अर्थात् परमेश्वर एक भी है, और अनेक भी है; भावत्वं एक, व्यक्त्वं अनेक; अर्थात् इश्वर पदमें द्वैत भाव नहीं, ईश्वर पद एक ही रूप है. इत्यादि नामों से तथा ज्ञान स्वरूप और निर्मल रूप कीर्त्तन करते है.

आरियाः—यह तो मानतुङ्गजी ने ऋषभ देव अवतार की स्तुति की है, सिद्ध अर्थात् ईश्वर की तो नहीं ?

जैनीः—ऋषभदेवजी क्या अनादि अ-

नन्त थे ? अरे भाई ! ऋषभदेवजी तो राज-
पुत्र, धर्मावतार, तीर्थंकर देव हुए हैं; अर्थात्
उन्होंने राज को त्याग और संयम को साध,
निर्विकार चित्त-निज गुण रमण-आत्मानन्द
पाया; तब अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा ईश्वरी-
य ज्ञान प्रकट हुआ, जिसके प्रयोग से उ-
न्होंने जाना और देखा कि, शुद्ध चेतन—
परमात्मा परमेश्वर भी ऐसे ही सर्व दोष
रहित—सर्वदा आनन्द रूप है. तब अज्ञान
का अन्त होकर, केवल ज्ञान प्रगट हुआ,
लोकालोक, जड़-चेतन, सुक्ष्म-स्थूल, सर्व
पदार्थों को प्रत्यक्ष जाना; अर्थात् सर्वज्ञ हुए.
फिर परोपकार के निमित्त, देश देशान्तरों में
सत्य उपदेश करते रहे; अर्थात् ईश्वर सिद्ध
स्वरुप ऐसा है-और जीवात्मा का स्वरुप एसा
है—और जड़ पदार्थ परमाणु आदि का
स्वरुप ऐसा है-और इनका स्वभाव जड़ में
जड़ता, चेतन में चेतनता, अनादि है-और

ऐसे कर्मबंध और मोक्ष होती है, इत्यादिक. और तुम भी इसी बात को मानते हो; परन्तु यथार्थ न समझने से और प्रकार से कहते हो. जैसे कि, इश्वर ने ऋषियों के हृदय में ज्ञान की प्रेरणा की, तब उन्होंने वेद कहे. सो हे भोले ! क्या इश्वर को राग द्वेष थी, जो कि उन चार ऋषियों के हृदय में ज्ञान दिया, और सब को न दिया ?

आरिया—अजी ! जिनके हृदय शुद्ध होते हैं, उन्हीं को ज्ञान देते हैं.

जैनीः—तो बस! वही बात जो हमने उपर लिखी है कि ईश्वर ज्ञान नहीं देता, जिन ऋषियों के हृदय तप-संयम से शुद्ध हो जाता है, उनको स्वयं ही ईश्वर का ज्ञान प्राप्त हो जाता है. बस ! फिर वह ऋषभ-देवजी देहान्त होनेपर रागद्वेष इछा संज्ञा के अभाव से मोक्ष अर्थात् ईश्वर परमात्मा के प्रकाश में प्रकाश रुप से प्रविष्ठ हुए—शामिल

हुए. उस मोक्षपद सिद्ध स्वरुप की स्तुति की है. और इसी प्रकार से तुम लोग भी मानते हो. जैसे कि सम्बत् १९५४ के छपे हुए "सत्यार्थ प्रकाश" के प्रथम समुल्लास की ३ री पृष्ठ ११ वीं पंक्तिमें लिखा है, कि "ॐ" आदि परमेश्वर के नाम यजुर्वेद में आते हैं, और ४ थे पृष्ठ नीचेकी १म पंक्ति में और पृष्ठ ५ मी की ऊपरली १म पंक्ति में लिखा है, कि सर्व वेद सर्व धर्म अनुष्ठान रूप तपश्चरण जिसका कथन मान्य करते, और जिसकी प्राप्ति की इच्छा करके ब्रह्मचर्य्याश्रम करते हैं, उसका नाम "ॐ"कार है. अब समझने की यह बात है, कि जिसकी प्राप्ति अर्थात् परमेश्वर के मिलने की इच्छा करके तप आदि करते हैं अर्थात् प्राप्ति होना, मिलना, शामिल-होना इनका वास्तव में एक ही अर्थ है.

आरियाः—जैन मत में तो, जीव त-

प—संयम से शुद्ध हो कर मुक्त होता है उसे ही सिद्ध अर्थात् ईश्वर मानते हैं; अनादि सिद्ध अर्थात् ईश्वर कोई नहीं मानते हैं.

जैनः—उत्तराध्ययन सूत्र—अध्ययन ३६ गाथा ६५ में सिद्ध को ही अनादि कहा हैः—

(गाथा.)

एगत्तेण साइया अपज्जवसीया विय
पुहुत्तेण अणाइया अपज्जवसिया विय ॥६६॥

(एगत्तेण) कोइ एक तप—जप से निष्कर्म हो कर सिद्धपद को प्राप्त हुआ उसकी अपेक्षा से सिद्ध (साइया) आदि सहित, (अपज्जवसीया) अन्त रहित माना गया है; और (पहुत्तेण) इस से पृथक् बहुत की अपेक्षा से सिद्ध (अनाइया) आदि रहित अर्थात् जिसका आदि नहीं है, (अपज्जवसिया)

अन्त रहित (अन्त नहीं जिसका) अर्थात्, अनादि-अनन्त ऐसें कहा है जो महात्मा कर्म क्षय करके मोक्षपद को प्राप्त हुए हैं उनकी अपेक्षा से तो सिद्ध, आदि सहित और अन्त रहित माना गया है; और जो सिद्ध पद परम्परा से है वह अनादि-अनन्त है.

(आरिया:-) वह भी तो कभी सिद्ध बना होगा.

(जैनी:-) बना हुआ कहे तो आदि हुइ; अनादि की तो आदि नहीं हो सकती-और अनन्तका अन्त नहीं हो सकता क्योंकि जब सूत्रमें सिद्धको-अनन्त कह दिया तो फिर बना हुआ अर्थात् आदि कैसे कही जावे?

(आरिया:-) "सत्यार्थ प्रकाश" ४८८ पृष्ठ १३ वीं पंक्तिमें लिखा है कि जिस पदार्थको स्वभाव 'एक देशी' होवे उसका गुण-कर्म स्वभावभी 'एक देशी' हुआ करता है.

जैनीः—यह बात ठीक नहीं है; क्योंकि जो मोटा और बडा हो क्या उसमें गुण भी बडे होवें? और जो छोटा-पतला हो उसमें गुण भी छोटे अर्थात् स्वल्प होवें? परन्तु सूर्य्य तो 'एक देशी' और छोटा होता है, और उसका प्रकाश बडा—सर्वव्यापक होता है, कहो जी, यह कैसे?

आरियाः—तुम इश्वर को कर्त्ता मानते हो वा नहीं?

जैनीः—ईश्वर कर्त्ता होता तो हम मानते क्यों नहीं?

आरियाः—तो क्या ईश्वर कर्त्ता नहीं है?

जैनीः—नहीं; क्यों कि हमारे सूत्रों में और हमारी बुद्धि के अनुसार, किसी प्रमाण से भी ईश्वर कर्त्ता सिद्ध नहीं हो सकता है. तुम ईश्वर को कर्त्ता मानते हो?

आरियाः—हां; हमारे मत का तो सिध्दान्त ही यह है कि ईश्वर कर्त्ता है.

जैनीः—ईश्वर किस २ पदार्थ का कर्त्ता है ?

आरियाः—सर्व पदार्थों का.

जैनीः—पदार्थ तो कुल दो हैं:-(१) चेतन और(२) जड़. चेतन के २ भेदः-(१) परमेश्वर चेतन और(२) संसारी अनन्त जीव चेतन. जड़ के २ भेदः-(१) अरूपी(आकाश कालादि) और(२) रूपी(परमाणु आदि) सो तो अनादी हैं. अब यह बताओ कि इश्वर कोइ नया जीव अथवा नया परमाणु बना सकता है वा नहीं.

आरियाः—नहीं.

जैनीः—तो फिर तुम्हारे ईश्वर नें बनाया ही क्या ? बस ! तुम्हारा पूर्वोक्त ईश्वर को सर्व पदार्थ कर्त्ता कहना यह मिथ्या सिध्द हुआ.

(आरिया मौन हो रहा.)

जैनीः—भला! यह तो बताओ कि ईश्वर (स्वतंत्र) खुद अख्तियार है वा परतंत्र (पराधीन) अर्थात् बे अख्तियार है.

आरियाः—वाहजी वाह! आपने यह कैसा प्रश्न किया? ईश्वर के स्वतंत्र होने में कोई किसी प्रकार का सन्देह कर सकता है? ईश्वर तो स्वतंत्र ही है.

जैनीः—ईश्वर किस २ कर्म में स्वतंत्र है?

आरियाः—ईश्वर के भी क्या कर्म हुआ करते हैं?

जैनीः—तुम तो ईश्वर के कर्म मानते हो.

आरियाः—हम ईश्वर के कैसे कर्म मानते हैं?

जैनीः—तुम ईश्वर को न्यायकारी (न्याय करने वाला-दण्ड देने वाला), अपनी

इच्छा के अनुसार सृष्टि के रचने वाला मानते हो.

आरिया:—हां ! इसको तो हम स्विकार करते हैं.

जैनी:—न्याय करना भी तो एक कर्म ही है; और दण्ड देना भी एक कर्म ही है. इच्छा भी तो अन्तःकरण की स्थूल प्रकृति (कर्म) है. सृष्टि का रचना भी तो कर्म है.

आरिया:—(किञ्चित् मौन हो कर) हां ! मुझे स्मरण है कि हमारे " सत्यार्थ प्रकाश " के ६३४ पृष्ठ की २२ पंक्तिमें ईश्वर और उसका गुण कर्म स्वभाव ऐसे लिखा है.

जैनी:—भला ! यह तो बताओ कि ईश्वर कोन २ से और कितने कर्म करता है ?

आरिया:—कर्मों की संख्या (गिनती) तो नहीं की है.

जैनी:—तो फिर ईश्वर भी हमारा ही भाई ठहरा; जैसे हम अनेक कर्म करते हैं ऐसे ही ईश्वर भी करता है. तो फिर जिस प्रकार से हम को कर्म का फल भोगना पडता है, इसी प्रकार से ईश्वर को भी भोगना पडता होगा; वा, जैसे हमें कर्म फल भुगताने वाला ईश्वर को मानते हो, ऐसे ही ईश्वर को भी कोइ और ही कर्म फल भुगताने वाला मानना पडेगा.

(आरिया मौन हो रहा.)

जैनी:—जीव स्वतंत्र है वा परतंत्र ?

आरिया:—स्वतंत्र.

जैनी:—जीव में स्वतंत्रता अनादि है वा आदि ? स्वतः सिद्ध है वा किसीने दी है? यदि अनादि मानोगे तो जीव स्वयं ही कर्त्ता सिद्ध हुआ; इसमें फिर ईश्वर की क्या आवश्यकता (जरूरत) रही ? यदि आदि से (किसीकी

-ईश्वर की) दी हुइ मानोगे तो ईश्वर में दो दोष प्राप्त होंगे.

आरियाः—कौन २ से?

जैनीः-एक तो प्रथम अल्पज्ञता और द्वितीय अन्यायकारिता.

आरियाः—किस प्रकार से ?

जैनीः—इस को हम विस्तारपूर्वक आगे कहेंगे. अब तो तुम यह बताओ कि तुम ईश्वर में कौन २से गुण मानते हो ?

आरियाः-गुण तो बहुत से हैं; परन्तु संक्षेप से चार गुण विशेष प्रधान (बड़े) हैं.

जैनीः-कौन २से ?

आरियाः-१. सर्वज्ञ; २. सर्व शक्तिमान्; ३. न्यायकारी और ४. दयालु.

जैनीः--ईश्वर को कर्त्ता मानने से ईश्वर में इन चारों ही गुणों का नाश पाया जावेगा.

आरियाः—किस प्रकार से ?

जैनीः—इस रीति से. आप यह तो बताइये कि ईश्वर को न्यायकारी तुमारे मत में किस प्रकार से मानते हैं ?

आरियाः—राजा की तरह; जैसे चोर चोरी कर लेता है, फिर वह चोर स्वयं ही कारागार में (कैद में) नहीं जाता है; उस को राजा ही दण्ड देता है (कैद करता है). ऐसे ही ईश्वर जीवों को उन के कर्म का दण्ड (फल) देता हैं.

जैनीः—वह तस्कर (चोर) राजा की सम्मति (मर्जी) से चोरी करता है वा अपनी ही इच्छा से ?

आरियाः—अपनी इच्छा से; क्यों कि राजा लोगों ने न्यायकारी पुस्तक बना रक्खे हैं, और प्रत्येक स्थान में घोषणा करवा दी हैं कि कोई भी तस्करता (चोरी) मत करे; और अपने पहरेदार नियत कर रक्खे हैं, इत्यादि.

जैनीः—क्या, राजा में चोरों के रोकने की शक्ति नहीं है ?

आरियाः—शक्ति तो है; परन्तु राजा के परोक्ष चोरी हुआ करती है.

जैनीः—यदि राजा को किञ्चित् मात्र भी समाचार मिले, कि चोर चोरी करेंगे वा कर रहे हैं, तो राजा चोरी करने देवे वा नहीं ?

आरियाः—कदाचित् भी नहीं.

जैनीः—तो क्या करे ?

आरियाः—यदि राजा को प्रतीत (मालूम) हो जावे कि मेरे नगर में चोर आए हैं वा चोरी कर रहे हैं अथवा करेगें, तो राजा उनका प्रथम ही यत्न कर देवे अर्थात् जमानत ले लेवे किंवा कैद कर देवे, इत्यादिक.

जैनीः—यदि राजा ऐसा प्रबन्ध (इन्तियाम्) न करे अर्थात् प्रथम तो चैनसे चोरी कर लेने देवे और फिर दण्ड देने को

सुसन्न-६ अर्थात् होश्यार हो जावे तो राजा को कैसे समझना चाहिये ?

आरिया:—अन्यायशाली अर्थात् वे-इनसाफ.

जैनी:-बस ! अब देखिये कि तुम्हारे ही मुख से ईश्वर को राजा की तरह कर्त्ता मानने में तीन गुणो का तो नाश सिद्ध हो चुका.

आरिया:—किस प्रकार से ?

जैनी:—क्या तुम्हें प्रतीत (मालूम) नहीं हुआ ?

आरिया:—नहीं.

जैनी:—लो, सुनो ! जब कि तुम ईश्वर के कर्तृत्व अर्थात् कर्त्ता होने के विषय में राजा का दृष्टान्त देते हो, तो इस में युक्ति सुनो. भला ! यह तो बताइये कि चोर ईश्वर की प्रेरणा (इच्छा) से चोरी करने में प्रवृत्त होता है वा अपनी इच्छा से ?

आरियाः-अपनी ही इच्छा से.

जेनीः-क्या, ईश्वर में चोरों को चोरी से रोकने को शक्ति नहीं है? क्यों कि, विना ही इच्छा के काम तो दुर्बल अर्थात् कमजोर वा परतंत्र [पराधीन] के होते हैं; और इश्वर तो स्वतंत्र [खुद मुख्त्यार] और सर्वशक्तिमान् स्वीकार [माना] गया है; तो फिर उस की इच्छा के विना ही चोरी क्यों कर हुइ ? इससे यह समझा जावेगा कि ईश्वर सर्व शक्तिमान् नहीं है; क्यों कि ईश्वर की इच्छा के विना ही कुत्सित (खोटे) कर्म होते हैं, जिस प्रकार से तुमारे सम्वत् १९५४ के छपे हुए " सत्यार्थ प्रकाश " के १९२ पृष्ठ में लिखा हैः-(प्रश्न) परमेश्वर क्या चाहता है? (उत्तर) सब की भलाइ और सब का सुख चाहता है. अब विचारने की बात है कि वह तो चाहता नहीं कि किसी की बुराई वा किसी को कष्ट हो (कुकर्म हों);परन्तु होते है.

इस लिये ज्ञात हुआ कि ईश्वर कारण वश अर्थात् लाचारी अमर से लाचार है. इस वास्ते यह प्रथम ईश्वर में अशक्ति दोष सिद्ध हुआ.

आरियाः-ईश्वर में चोरों को रोकने की शक्ति तो है परन्तु ईश्वर की बेखबरी में चोरी होती है.

जैनीः—तो फिर ईश्वर सर्वज्ञ न रहा. क्यों कि सर्वज्ञता के विषय में बेखबरी का शब्द तो कदापि नहीं घट सकता. जो सर्वज्ञ है वह तो सर्व काल (भूत, भविष्य, वर्त्तमान) में सर्व पदार्थों को जानता है. इस लिये यह द्वितीय [दूसरा] अल्पज्ञता रूप दोष सिद्ध हुआ.

आरियाः—ईश्वर ने तो राजा की तरह (न्याय पुस्तक) अर्थात् कानून के पुस्तक वेद बना दिये हैं, और पहरेदार वत् रक्षक साधु वा उपदेशक घोषणा अर्थात् ढंढोरा फेर रहे हैं; परन्तु जीव नहीं मानते.

जैनीः—अरे भाई! यही तो ईश्वर के कर्त्ता मानने में, वा राजा की भान्ति दृष्टान्त देने में, दो दोष सिद्ध होने का लक्षण ही है. क्यों कि राजा को अल्प शक्तिमान् और अल्पज्ञ होनेसे ही न्याय पुस्तक—कानून की किताबें बनाने की और पहरेदारों के रखने की आवश्यकता अर्थात् जरूरत होती है. ऐसे ही ईश्वर में कर्त्ता मानने से दो दोष सिद्ध हुए हैं. क्यों कि जिसमें सर्वशक्ति हो और जो सर्वज्ञ हो, उसकी इच्छा के प्रतिकूल अर्थात् वर्खिलाफ काम कभी नहीं हो सकता. यदि हो भी तो पूर्वोक्त राजा कीसी तरह तृतीय [तीसरा] दोष अन्यायकारित्व का अर्थात् बेइनसाफ होने का माना जावेगा. जैसे कि किसी पुरुष के कई एक पुत्र हैं. और पिता की इच्छा सब पुत्रों के सदाचारी (नेक) और बुद्धिमान् [अक्लमन्द] और धनाढ्य (दौलतमन्द) होने की है, यदि पिता

के अधीन हो तो सब को पूर्वोक्त एक सार करे. परन्तु पिता के कुछ अधीन में नहीं, उनही के पूर्व कर्मों के अधीन है. कोई कर्मों के अनुसार बुद्धिमान और कोई मूर्ख, और कोई धनाढ्य ओर कोई दरिद्री, और कोई कुपात्र, और कोई सुपात्र होते हैं. अब देखिये कि किसी के पुत्रने किसी कारण से जहर खा लिया; जब उस को कष्ट हुआ तब उस का पिता और पिता के सज्जन जन आए और मालूम किया कि इसने जहर खाया है; तब उस के पिता को सब सज्जन पुरुष उपालम्भ (उलांभा) देने लगे कि तूने इस को जहर क्यों खाने दिया.? तब उसका पिता बोला, कि भला! मेरे सन्मुख (सामने) खाता तो मैं कैसे खाने देता? मेरे परोक्ष [परोखे] खा लिया है. अथवा फिर उस के पिताने कहा कि खाया तो मेरे प्रत्यक्ष [सामने] ही है. तब सज्जन पुरुषों ने कहा कि तूने जहर खाते

हुए इसे क्यों कर नहीं रोका? तव पिता बोला कि मैं हटाने में वाकी नी रखता ? मैंने तो इ-स के हाथ में पुमिया देखते ही हाथ पकड लिया और बहुत निरोध किया अर्थात् हटाया, परन्तु यह तो वलात्कार (जवरदस्ती) से हाथ छुमा कर खा ही गया. मैं फिर बहुत लाचार हुआ. क्यों कि मेरे में इतनी शक्ति कहां थी, जो कि मैं इस के साथ मुष्टियुद्ध अर्थात् मुकम्मुका हो कर इसे जहर खाने से रोकता. अब आप समझ लीजिये कि पिता की वेखबरी में और शक्ति से बाह्य (बाहर) हो कर पुत्र के जहर खाने से तो पिता के जिम्मे अन्याय कदापि सिद्ध नहीं हो सकता; परन्तु पिता को खबर नी हो और छुमाने की शक्ति नी हो, फिर पुत्र को विष खाने देवे और खाने के अनन्तर (पीछे) पुत्र को दण्ड अर्थात् घर्षण (झिडका) आदि देवे, तो वह सज्जन पुरुष पिता को अन्यायकर्त्ता (वेइन्साफ)

कहें वा नहीं, कि अरे मूर्ख! तेरे सामने ही तो इसने विष (जहर) खाया, और यद्यपि तेरे में रोकने की पूर्ण शक्ति भी थी, तथापि तूने उस समय तो रोका नहीं, और अब इसें तूं दण्ड देता है! अरे अन्यायी! अब तूं भला बनता है!

इसी प्रकार से तुम भी ईश्वर को क्या तो अल्पज्ञ और शक्तिहीन मानोगे नहीं तो अन्यायी. यह तृतीय (तीसरा) दोष अवश्य ही सिद्ध हुआ. अब चतुर्थ (चौथा) सुनो.

कहोजी! तुम्हारे वेदों में ईश्वरोक्त (ईश्वर की कही हुइ) यह ऋचा है कि "अहिंसा परमो धर्मः"?

आरियाः—हां! हां! जी सत्य है.

जैनीः—तो यह लाखों गौ आदिक पशुओं का प्रतिदिन कसाई आदिक वध करते हैं यह क्या? यदि ईश्वर की इच्छा सें होते हैं, तो ईश्वर की दयालुता कहां रही? इस भान्ति से यह चतुर्थ (चौथा) दोष निर्दयता का

सिद्ध हुआ. और "अहिंसा परमो धर्मः" यह कहना कहां रहा? यदि विना मर्जी से कहो, तो ईश्वर उन हिंसकों (कसाईयों) से डर कर क्या लाचार हो रहता है? जो कि उनको रोक नहीं सकता तो पूर्वोक्त शक्तिहीन ठहरा; अर्थात् सर्वशक्तिमान न रहा.

आरियाः—ईश्वर ने जीवों को स्वतंत्रता अर्थात् अख्तियार दे दिया है, इस कारण सें अब रोक नहीं सकता; जो चाहें सो करे.

जैनीः—बस! अब तुम्हारे इस कथन से हमारे पूर्वोक्त [पहले कहे हुए] दो दोष सिद्ध हुए.

आरियाः—कौन २ से वह दोष हैं?

जैनीः—एक तो अल्पज्ञता, और दूसरी अन्धायत्ता.

आरियाः—किस २ प्रकार से?

जैनीः—इस भ्रान्ति से; ईश्वर को प्रतीत (मालूम) न होगा कि यह जीव हिंसा

आदि पूर्वक खोटे कर्म करेंगे. यदि मालूम होता, तो ऐसे २ दुष्ट कर्म करनेवाले जीवों को ईश्वर स्वतंत्रता कदापि न देता. इस से प्रथम अल्पज्ञता का दोष सिद्ध हुआ. यदि मालूम था, तो ऐसा दुष्ट कर्म करनेवाले जीवों को ईश्वर ने स्वतंत्रता (अख्तियारी) दी, सो महा अन्याय है. क्यों कि, अब भी राजा लोग दुष्ट कर्म करने वाले [स्वामी की मर्जी से प्रतिकूल अर्थात् विना आज्ञा से चलने वाले] दुष्ट जनों को स्वतंत्रता नहीं देते हैं. इस से दूसरा अन्यायता का दोष सिद्ध हुआ.

आरियाः—ईश्वर उन कसाईयों से उन जीवों का कर्म फल (बदला) भुगताता है.

जैनीः—तो फिर ज्यों भी ईश्वर के ही जिम्मे दोष आवेगा. क्यों कि जब गौ के जीव ने कर्म कसाइयों से भुगताने वाले करे होंगे, तब भी तो ईश्वर मौजूद ही होगा. फिर वह कर्म ईश्वर ने कैसे करने दिये, जिन का फल (बदला)

भुगताने में ईश्वर को कसाई—पापी बनाने पड़े? यदि ऐसे कहोगे कि वह गौ का जीव स्वतंत्र है, अपनी अख्तियारी सें कर्म करता है, तो फिर वह जिव स्वयं ही कर्त्ता अर्थात् अपने कर्मों का कर्त्ता (अपने फेलों का फायल) रहा, इस से ईश्वर तो कर्त्ता न ठहरा. यदि ऐसे कहोगे कि ईश्वर ने ही जीवों को स्वतंत्रता (अख्तियार) दिया है, तो फिर वही दो दोष विद्यमान (मौजूद) हैं: (१) अल्पज्ञता और (२) अन्यायता. यदि यह कहोगे कि वह कर्म भी इश्वर ही ने करवाये हैं, तब तुम आप ही समझ लो कि तुम्हारे ईश्वर की कैसी दयालुता और न्यायता है! तुम्हारी भान्ति मुसल्मान लोग भी खुदा को कर्त्ता मानते हैं.

मुसल्मानः—खुदा के हुक्म विना पत्ता भी नहीं हिल सकता.

जैनीः—खुदा को क्या २ मंजूर है?

मुसल्मानः—(१) रहम दिली, (२) स-

च बोलना, (३) इमानदारी, (४) बन्दगी वगैरः २

जैनीः—क्या २ ना मंजूर है ?

मुसल्मानः-(१) हरामी, (२) चोरी, (३) चुगलखोरी, (४) बे रहमी,(५) बे इमानी, (६) ब्याज खाना, (७) सूअर मांस, (८) मदिरा (शराब), वगैरः २

जैनीः—तो फिर खुदा के हुक्म बिना उपर लिखे हुए दुष्ट (खोटे) कर्म क्यों होते हैं? अब या तो तुम्हारा पहिला कथन [कहना] गलत है कि, खुदा के हुक्म बिना पना भी नहीं हिलता; (२) या तो खुदाही के हुक्म से उपर लिखे दुष्कर्म होते हैं! तो यह तुम ही विचार कर लो कि तुम्हारा खुदा कैसे २ दुष्ट कर्म करवाता है ? (३) क्या खुदा के हुक्म से बिना दुष्ट कर्म करने वाले खुदा से बलवान् (जबरदस्त) हैं, जो खुदा को रह [अदूल] के निन्दित कर्म करते हैं? अब यह

बताइये कि इन पूर्वोक्त तीनों बातों में से कौन सी बात सत्य है ? बस ! अब पूर्वोक्त दोनों प्रश्नोत्तरों के अर्थ को निरपक्षदृष्टि से देखो और सोच समझ कर मिथ्या भ्रम का त्याग करो और सत्य का ग्रहण करो. यह पूर्वोक्त चार दोष सिद्ध होने से हम ईश्वर को कर्त्ता नहीं मानते हैं अब तुम ईश्वर के गुण और ईश्वर का कर्त्ता होना और यह चारों दोष भी न आवें ऐसा सिद्ध कर दिखाओ.

यदि इस भ्रम से कर्त्ता कहते हो कि जड़ आप ही कैसे मिल जाता है, तो हम आगे चल कर जड़ का स्वरूप का भी किञ्चित् वर्णन करेंगे; उससे तुमने निश्चय कर लेना. परन्तु कुड़मां (सम्बंधी) वाले नाई की तरह वार २ निषेध (इन्कार) न करना; जैसे दृष्टान्त है कि सुंदरपुर नगर में धनदत्त नाम से एक शेठ रहता था, और घर में एक पुत्र भी था. वसन्तपुर नगर से सोमदत्त शेठ की कन्या की सगाई

हठवादी नामक नाई धनदत्त शेठ के पुत्र के लिये ले कर आया. और धनदत्त शेठ ने उस नाई की जक्ति जान्ति (अच्छी तरह से) खातिर करी. और फिर शेठ ने नाई से पूछा कि, आप प्रसन्न हुए ? तब नाई ने कहा कि, नहीं. फिर दूसरे दिन शेठ ने बहुत अच्छी जान्ति से घेवरादिक पकवान खिलाए और पूछा कि, राजाजी! अब तो प्रसन्न हुए हो? तब नाई ने उत्तर दिया कि, नहीं. इसी प्रकार से फिर तीसरे दिन शेठ ने विविध प्रकार की अर्थात् जान्ति २ की वस्तुएं मोतीचूर और मिठाई, बादाम, पिस्तों के बने हुए मोदक अर्थात् लड्डू आदिक जोजन करवाये और फिर पूछा कि, जी! अब तो प्रसन्न हो? नाई ने कहा कि, नहीं. तब शेठजी लाचार हुए, और उस नाई को विदा किया.

॥ अथ गुरु शिष्य सम्बाद ॥

शिष्यः-हे गुरो ! सुख-दुःख, जीवन-मरण,सुकृत-दुष्कृत आदिक व्यवहारों का कर्त्ता जीव है वा कर्म, यह आप कृपापूर्वक मुझे भली प्रकार से समझा दीजिये.

गुरुः-हे शिष्य ! कर्म ही है.

शिष्यः--यह लो, अपना वस्त्र, वेष, पुस्तक, इनको जलाञ्जलि देता हूं! और अपने घर को जाता हूं!

गुरुः-किस कारण से उदासीन हुए हो?

शिष्यः-कारण क्या ? यदि आप कर्म ही को कर्त्ता कहते हो तो फिर हम लोगों को उपदेश किस लिये करते हो ? और ज्ञान शिक्षा क्यों देते हो कि, सुकृत (शुभ कर्म) करो और दुष्कृत [खोटे कर्म] मत करो ? क्यों कि जीव के तो कुछ अधीन ही नहीं है : न जाने कर्म साधुपन करवावें, न जाने चोरी करवावें !

गुरुः-धीरज से सुनो! कर्त्ता वा अकर्त्ता जीव ही है.

शिष्यः—हांजी! यह तो सत्य है; क्यों कि जीव ही शुभ (अच्छे) और अशुभ (बुरे) कर्म करने में स्वतंत्र है. परन्तु गुरुजी! इस में एक और सन्देह उपजा है. कि यदि जीव ही कर्त्ता हो, तो फिर जीव अपने आप को दुःखी होने का, बूढे होने का, मृत्यु होने का और दुर्गति में जाने का तो कभी यत्न नहीं करता है; फिर यह पूर्वोक्त व्यवस्था (हालतें) क्यों कर होती हैं ?

गुरू (थोडा हंस कर):-तो भाई! कोइ इश्वरादिक कर्त्ता होगा.

शिष्य (ठहर कर):-ऐसा ईश्वर कौनसा है जो जीवों को पूर्वोक्त व्यवस्था (हालतें) देता है ? क्यों कि जीव तो अर्थात् हम तो दुःखी होना, बूढे होना, मर जाना, दुर्गति में पडना चाहते नहीं है. और वह हमें ब-

बलात्कार(जबर्दस्ती से) दुःखी और मृत्यु आदि व्यवस्था को प्राप्त करता है. क्योंकि कइएक ऐसे २ जवानी में जीवन को लोचते ही मर जाते हैं, जिनके मरने के पश्चात् (पीछे से) सात २ गृहों (घरों) को यंत्र (ताले) लग जाते हैं, और स्त्रियें रुदन करती ही रह जाती हैं. क्या यह कष्ट इश्वर देता है ? यदि ऐसे ईश्वर का कोई स्थान बताओ तो उससे पूछें कि, हे ईश्वर ! जीवों को इतना कष्ट क्यों देते हो ? क्या आप को दया नहीं आती ?

गुरुः—कर्म तो स्वयं (खुद) जीव ही करता है; ईश्वर तो उनके कर्मानुसार फल-ही देता है.

शिष्यः—क्या, जिस प्रकार से मजदूरों कों मजदूरी का फल (तनखाह) बाबू देता है, ईश्वर भी इसी प्रकार से जीवों के तांई कर्मों का फल देता है वा और प्रकार से ?

गुरुः—मजदूरों की भान्ति जीवों को

फल नहीं देता है.

शिष्यः—तो, और किस प्रकार से?

गुरुः—जिस रति से सूर्यका तेज अपनी शक्ति द्वारा सब पदार्थों को प्रफुल्लित करता है, इस प्रकार से ईश्वर भी अपनी शक्ति द्वारा फल देता है.

शिष्यः—सूर्य क्या २ शक्ति देता है ?

गुरुः—अमृत में अमृत शक्ति और जहर में जहर शक्ति, इत्यादिक.

शिष्यः—अमृत में अमृत शक्ति और जहर में जहर शक्ति तो हुआ ही करती हैं; सूर्य ने अपनी शक्ति द्वारा क्या दिया? और यह भी पूर्वोक्त तुम्हारा कहना ईश्वर कर्त्ता वाद के मत को बाधक (धक्का देने वाला) है; क्यों कि सूर्य तो जड़ है, उसको तो भले बूरे पदार्थ की प्रतीति नहीं है, कि इस वस्तु से कौन २ सा लाभ और क्या २ हानि होगी. तो ते स-

ब को पुष्टि देता है. परन्तु ईश्वर को तुम सर्वज्ञ मानते हो वह अपनी शक्ति (निरर्थक) अर्थात् . निकम्मे पदार्थ कटीली, सत्यानाशी, कौंचफली आदिक जन्तुओं में सांप, मच्छर आदिक जीव जो किसी भी कृत्य को सम्पादन अर्थात् सिद्ध नहीं कर सकते, प्रत्युत (बल्कि) सब को हानि ही पहुंचाते हैं, तो उन्हें ईश्वर पुष्टि क्यों देता है ? चेतन को तो शुभ अशुभ, और नफा-नुकशान समझ कर पुष्टि देनि चाहिये, जैसे कि, मेघ (बादल) तो चाहे रूमी-करूमी बाग में बरसे, परन्तु माली तो फलदायक को ही सिञ्चन करेगा. भला! और देखो, ईश्वर की शक्ति चेतन, और सूर्य की तेजी जड; यह तुमारा हेतु कैसे मिल सकें ? भलाजी! फल फूलों को तो सूर्य पुष्टि देता है परन्तु सूर्य को, फल फूलों को पुष्टि देने की शक्ति कौन देता है ?

गुरू (हंस कर):—ईश्वर देता है.

शिष्यः-तो ईश्वर को शक्ति कौन देता है?

गुरूः—है?

शिष्यः—स्वामी जी! "है" काहेकी? यों तो मानना ही पडेगा कि ईश्वर को भी कोई और ही शक्ति देने वाला होगा; और फिर उसको भी कोइ और ही शक्ति देनेवाला होगा; यथा फेर-फरका दृष्टान्त हैः-

"वसन्तपुर" नाम से एक नगर था.वहां का महीपाल नाम से सूधे स्वभाव वाला राजा था.उसकी सभा में जो मकद्दमा आता था उसके इजहार मुद्दइ,मुद्दालह जो कुछ देते थे उनको सुन कर वह कुछ भी इनसाफ नहीं करताथाः केवल यही कह देता था कि,"फेर?" मुद्दई कहता, कि महाराज! मैने इसे एक हजार रुपैया दिया. राजा बोला कि, "फेर?" मुद्दई कहने लगा कि, मुदालहने न तो असल दिया और नाहीं सूद दिया. तब राजा बोला कि, "फेर?" इसी प्रकार से कचहरी

का समय पूरा कर देता. एक समय एक ज-
मीन्दार का मकद्दमा आया और जमीन्दार ने
आकर कहा कि, मेरी खेती में से आधी खेती
मेरे चचा के पुत्र अर्थात् भाई ने काट ली है.

राजाः—फेर?

जमीन्दारः—मैंने उसे पकड़ लिया.

राजाः—फेर ?

जमीन्दारः—उसने मुझे मारा.

राजाः—फेर?

जमीन्दारः—मैंने उस को और उस के
बेटों को भी मारा.

राजाः—फेर?

जमीन्दारने देखा कि यह तो फेर ही फेर
करता है, मेरे इजहारों का फल कुछ भी नहीं
निकालता; तब जमीन्दार बदल कर बोला कि,
मेरे खेत को चिड़ियां बहुत चुगने लग गई.

राजाः—फेर ?

जमीन्दारः—मैंने बहुत उड़ाइ परन्तु

हटी नहीं.

राजाः—फेर ?

जमीन्दारः—मैने एक गढ्ढा खुदवाया.

राजाः—फेर ?

जमीन्दारः—फिर मैने उसमें दाने डाल दिये, तब वहां चिड़ियां चुगने चली गई.

राजाः—फेर ?

जमीन्दारः—मैने उस गढे (टोए) के ऊपर सिरकी डाल कर सब चिड़िया को बन्द कर दिया.

राजाः—फेर?

जमीन्दारः—"उस में केवल इतना छोटा छिद्र रक्खा, कि जिसमें से एक ही चिडियां निकल सके.

राजाः—फेर ?

जमीन्दारः—एक चिड़िया निकल कर उड़ गई, फर्र !

राजाः—फेर ?

जमीन्दारः—एक और निकल गई; फर्र?

राजाः--फेर?

जमीन्दारः—फर!

राजाः—फेर?

जमीन्दारः—फर्र!

इसी प्रकार से बहुत काल तक राजा और जमीन्दार "फेर" "फर्र" कहते रहे, अन्त में लाचार होकर, राजा बोला कि, हे जमीन्दार! तेरी "फर्र" कभी समाप्त भी होगी? जमीन्दार ने जबाब दीया की, जब तुम्हारी "फेर" समाप्त होगी तभी मेरी "फर्र" खतम होगी!

शिष्यः—यह कई मतानुयायी लोक पूर्वोक्त ईश्वर को किस कारण से कर्त्ता मानते हैं?

गुरुः—जड़ वस्तु स्वयं ही (आप ही) नहीं मिलती और बिछड़ती; इनके मिलाने वा-

ला कोइ और ही अर्थात् ईश्वर होगा, यथा काष्ठ और लोहा पृथक्२ अर्थात् अलग२ पडा है वह आप ही मिलके तख्त नहीं बन सकता, उनके मिलाने वाला तरखान होगा, इस कारण से.

शिष्यः—बस, इसी भ्रम से ईश्वर को कर्त्ता मान वैठे हैं? यदि इसी प्रकार से और भी भ्रम में पड़ जावें कि जड़ पदार्थ आप ही नहीं मिलते हैं, इन के मिलाने वाला कोई और ही होना चाहिये, तो फिर यह भी मानना पड़ेगा कि, यह जो भान्ति२ के वादल होते हैं इनके वनाने वाले भी राज मजदूर होंगे, और सायंकाल के समय जो रङ्ग बरङ्ग के वादल हो जाते हैं उनके रङ्गने वाला कोई रंजक अर्थात् ललारी भी होगा. और जो आकाश में कभी२ इन्द्र धनुष्य पडता है उसके वनाने वाला भी कोई तरखान होगा, और कई काच आदि वस्तुओं का प्रतिबि-

भ्व (साया) पड़ जाता है तो उसका शीघ्र ही बनाने वाला कोई सिकलीगर भी होगा. अपितु नहीं, यह पदार्थों की पर्याय के स्वभाव (*Nature*) होते हैं, इस विषय का स्वरूप हम आगे भी लिखेंगे; परन्तु पूर्वोक्त पदार्थ पर्याय की खबर के न होनेसे पूर्वोक्त भ्रम पड़ता है. अब यह समझना चाहिये कि, क्या२ पदार्थ किस२ पर्याय में मिलने बिछड़ने का स्वभाव रखते हैं; यथा चुम्बक-पाषाण(मिकनातीस) और लोहे की सूइः दोनों जड़ हैं, परन्तु स्वयं (खुद) ही अपने स्वभाव की आकर्षण शक्ति से मिल जाते हैं.

गुरु—वह यों कहते हैं कि स्वभाव भी ईश्वर ने ही दिया है.

शिष्यः—सो सिंहों को (शेरों को) शिकार का और कसाईयों को पशुवध का स्वभाव किसका दिया मानते होंगे.

गुरुः—कर्मानुसार कहते हैं.

शिष्यः—बस! इतना ही कहना था. परन्तु प्रकृति का भी गुण, कर्म, स्वभाव पूर्वोक्त होता ही है, फिर शंका का क्या काम? यदि ईश्वर का दिया स्वभाव होवे तो अग्नि को ईश्वर जल का स्वभाव दे देवे और जहर को अमृत का स्वभाव दे देवे; क्यों कि ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है; जो चाहे सो करे. परन्तु ईश्वर कर्त्ता नहीं है; क्यों कि पञ्चम वार सं. १९५४ के छपे हुए "सत्यार्थ प्रकाश" अष्टम समुल्लास २२७ पृष्ठ २१, २२, २३, पंक्ति में लिखा है कि, जो स्वाभाविक नियम अर्थात् जैसे अग्नि, उष्ण, जल, शीत, और पृथिवी आदिक जड़ों को विपरीत गुण वाले ईश्वर भी नहीं कर सकता. अब तर्क होता है की, वह नियम किस के बांधे हुए थे, जिनको ईश्वर भी विपरीत अर्थात् बदल नहीं सकता? बस! सिद्ध हुआ कि, पदार्थ भी अनादि हैं और उनके स्वभाव अर्थात् नियम भी अना-

दि हैं, तो फिर ईश्वर किस वस्तु का कर्त्ता हुआ ?

गुरुः—ईश्वर बनती ही बना सकता है.

शिष्यः—बनती का बनाना तो काम अल्पज्ञों का और सामान्य पुरुषों का होता है.

आरिया बोल उठाः–क्या, ईश्वर अपने आपके नाश करने की शक्ति भी र खता है ?

जैनीः—हां, हां ! जब सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान् है तो जो चाहे सो करे और जो न चाहे सो न करे.

गुरुः—अरे भाई ! शायद पुद्गल की पर्याय (स्वभाव) शक्ति को ही ईश्वर कहते हो, जिस पुद्गल पर्याय का स्वरूप हम आगे लिखेंगे. परन्तु तुम यह बताओ कि, ईश्वर के कर्त्ता न होने में तुम क्या प्रमाण रखते हो ?

शिष्यः—यदि ईश्वर कर्त्ता होता तो ई-

श्वर की मर्जी के बाहर पूर्वोक्त गोवधादिक हिंसा और झूठ चोरी आदिक कभी न होते.

गुरुः—यह तो सत्य है; परन्तु वह कहते हैं कि, ईश्वर को कर्त्ता न माने तो ईश्वर वेकार माना जावे.

शिष्यः—तो क्या हानि (हर्ज) है? कार तो गर्जमन्द-पराधीन-जिन का निर्वाह न हो वह करते हैं. क्यों करें? कार करेंगे तो खा लेंगे, न करेंगे तो किस तरह से निर्वाह होगा? परन्तु ईश्वर तो अनन्त ज्ञान आदि ऐश्वर्य (दौलत) का धारक है और निष्प्रयोजन (वे-परवाह) है. वह कार काहेको करे? वस! ईश्वर इन पूर्वोक्त जीवों के कर्मफल भुगताने में अर्थात् दुःखी करने में कारण रूप होता है; तो पहिले दुःखदायी कर्म करते हुए हटाने में कारण रूप क्यों नहीं होता? ऐसे पूर्वोक्त अशक्त, और अल्पज्ञ, अन्यायी, कुम्हार, माली, तरखान, मजदूर, वाजीगर

आदि की भ्रान्ति अनेक कर्म करनेवाले ईश्वर को तुम ही मानो; मैं तो नहीं मानता. मैं तो पूर्वोक्त निष्कलंक, निष्प्रयोजन, सच्चिदानन्द, सर्वानन्द, एकरस ऐसे ईश्वर को मानता हूं.

गुरु:—हम तो ईश्वर को कर्त्ता नहीं मानते हैं, परन्तु तेरी बुद्धि में यथार्थ अर्थ दिखाने के लिये उलट पुलट करके कह रहे हैं. हम तो ईश्वर को कर्त्ता मानने में ४ दोष प्रथम ही सिद्ध कर चुके हैं.

शिष्यः—हां,हां, गुरुजी! मैंने भी 'नाममाला,' 'अमर कोष' आदिक कई एक ग्रंथ देखे और पढे भी हैं. वहां वीतराग देव, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों के नाम महिमा सहित चले हैं; परन्तु ऐसा ईश्वर और उसके नाम की महिमा का शब्दार्थ नहीं आया कि, ईश्वर जीवों को पूर्वोक्त कष्ट देनेवाला है.

गुरुः—नहीं २ हे शिष्य! पूर्वोक्त व्यवस्थाओं का कर्त्ता तो कर्म ही है.

शिष्यः—तो फिर वही पहीले वाली बात "यदि कर्म कर्त्ता है तो जीवों को उपदेश क्यों ?"

गुरुः—तूं तो अब तक भी अर्थ को नहीं समझा.

शिष्यः—मैं नहीं समझा.

गुरुः—ले समझ; तेरा यह प्रश्न था कि, (१) "यदि कर्म कर्त्ता हैं तो जीवों को भले बुरे कर्म की रोक टोक क्यों ? और (२) यदि जीव क़र्त्ता है तो पूर्वोक्त सुखों के ऊपाय करते हुए दुःख और मृत्यु आदि का होना क्यों ? अब इसका तात्पर्य्य (भेद)सुन. जब यह जीव क्रियमाण अर्थात् नये कर्म करे उनमें तो जीव कर्त्ता है;और फिर वही कर्म किये हुए वासनाओं से खिंचे हुए अन्तःकरण में सञ्चित पूर्व कर्म हो जाते हैं अर्थात् पिछले किये हुए,तब उनके पूर्वोक्त फल भुगताने में वह कर्म ही कर्त्ता हो जाते हैं. इसका विशेष वर्णन हम आगे करेंगे.

शिष्यः—भला, गुरूजी! यह फरमाइये कि, पूर्व कर्मों के अनुसार क्या २ व्यवस्था हैं, और जीवों के अधीन नये कर्म क्या २ हैं?

गुरुः—पूर्व कर्मों के अधीन तो वही पूर्वोक्त आयु, अवगहना आदि अर्थात् सुख के उपाय करते हुए दुःख का होना (यथा पुत्र को पाला, पढाया, कुलवृद्धि के लिये विवाहा; परन्तु वह मृत्यु हो गया, रांड रह गई, इत्यादि) और जरा (बुढापा), मृत्यु आदि का होना यह पूर्व कर्मों के अनुसार हैं. इस वास्ते इस विषय में शास्त्रकारों का उपदेश भी नहीं है कि, तुम लम्बे क्यों हुए? ठिगने (मधरे) क्यों? काले क्यों? नर क्यों? नारी क्यों? छोटी आयु वाले क्यों हुए? मृत्युवश क्यों हुए? इत्यादि. क्यों कि, इस विषय में कर्म ही कर्त्ता है, अर्थात् यह काम पूर्व कर्मों के अधीन हैं; जीव के अधीन नहीं हैं. और जो नये शुभाशुभ कर्म करते हैं, अर्थात् दया, दान, परोप-

कार, आदि का करना, और हिंसा, मिथ्या, ठगी, चोरी, मैथुन, परनारीगमन, ममता, परद्रव्यहरण, कपट, निन्दा, मांसभक्षण, मदिरापानादि का करना इनमें जीव कर्त्ता है. अर्थात् यह जीव के अख्तियार हैं. यथा किसी पुरुष ने चाहा कि मैं झूठी गवाही दूं. अब उसमें उसका अख्तियार है; चाहे देवे, चाहे न दे; क्यों कि यह नया कर्म करना है. झूठ बोलना पूर्वकर्म का फल नहीं है, परन्तु जब वह झूठी गवाही दे चुका तब उस झूठ बोलने का पाप सञ्चित अर्थात् पूर्व कर्म हो गया. अब वह पुरुष चाहे कि मुझ को झुठ के पाप कर्म का फल (अर्थात् इस लोक में तो जुर्माना जेलखाना आदिक, और पर लोक में दुर्गति) न हो; परन्तु अब उसमें जीव का अर्थात् पुरुष का अख्तियार न रहा, कि उस कर्म का फल न भोगे. अपितु अवश्य वह कर्म उसे फल देगा. यथा दृष्टान्त है कि:—

जब तक तीर हाथ में था तब तक उसका अ-
ख्तियार था कि कहींको चला दे; परन्तु जब
छोड़ चुका तो इख्तियार से बाहिर हुआ;नहीं
रख सकेगा; जा ही लगेगा.अथवा कोई पुरुष
बिष खाने लगे,तो उसे अख्तियार है कि खाये,
वा न खाये;सोच समझ ले.परन्तु जब खा चुके
तो बेअख्तियार है; फिर कितना ही वह पुरुष
चाहे कि मुझे इसका फल (दुःख वा मरण)
न हो, तथापि वह विष (जहर) उसे अव-
श्य ही फल देगा.इसी प्रकार से जिस वास-
ना से कर्म करता है उस वासना की आकर्षण
शक्ति द्वारा (खैंच से) परमाणु इकठे हो कर
कर्म रूप एक प्रकार का सूक्ष्म मादा विष की
तरह अन्तःकरण रूप मेद में संग्रह (इकठा)
हो जाता है. उसका सार रूप कर्मफल नि-
मित्तों से परलोक में भोगता है. इसका स्व-
रूप हम विस्तार सहित आगे लिखेंगे.इसी लिये
शास्त्रकारों का जीवों को उपदेश है कीः—

हे जीवो ! नये कर्म करने में तुम स्वतंत्र हो; समझ के चलो; खोटे कर्म पूर्वोक्त हिंसा, मिथ्या, आदि से हटो; और भले कर्म दया, दान आदि में प्रवृत्त रहो.

आरियाः-यह तो जो तुमने कहा सो सत्य है, परन्तु हमारा यह प्रश्न है कि, चोर चोरी तो आप ही कर लेता है, परन्तु कैद में तो आप ही नहीं जा धसता; कैद में पहुंचाने वाला भी तो कोई मानना चाहिये ?

जैनीः—हां, हां; चोरने जो चोरी का कर्म किया है वास्तव में तो उसके कर्म हीसे कैद होती है; परन्तु व्यवहार में राजा, कोतवाल (थानेदार) सिपाही आदि के निमित्तों से जाता है. यदि चोर को स्वयं (खुद) ही फांसी लग जावे वा स्वतः उछल कर कैद में जा पड़े तो समझा जाय कि ईश्वर ने ही चोर को चोरी का फल भुगताया. क्यों कि तुम्हारी इस में वास्तव से [असल] तर्क यही होगी

कि, जीव कर्म तो आप ही कर लेता है, परन्तु स्वयं (आप) ही कैसे भोगता है ? जैसे सम्बत् १९५४ के छपे हुए "सत्यार्थ प्रकाश" के ४४९ पृष्ठ पंक्ति नीचे की १८ में लिखा है कि, "कोई जीव खोटे कर्म का फल भोगना नहीं चाहता है, इस लिये अवश्य ही परमात्मा न्यायाधीश होना चाहिये." अब देखिये कि, कर्म का स्वरुप न जानने से यह मनः कल्पना कर लीनी, अर्थात् मान लिया कि कर्म फल भुगता ने वाला अवश्य होना चाहि इस लेख से यह भी सिद्ध हुआ कि, उन्हें निश्चय न हुआ होगा कि कर्म भुगता ने झगडे में पडने वाला भी कोई ईश्वर " है. क्यों कि ' होना चाहिये ' यह शब्द सन्देहास्पद अर्थात् शकदार है. यों नहीं लिखा है कि, फल भुगताने वाला अवश्य है. बस ! वही ठीक है जो जैनी लोग कहते हैं. जैसे कि चोर चोरी का फल निमित्तों से भोगता

है ऐसे ही जीव भी स्वतंत्रता से कर्म करने में खुद मुखत्यार है (अर्थात् क्रियमाण में) और फिर वही कर्म जिसर् अध्यवसाय से (वासना से) किये हैं उसी वासना में मिल कर कारण रुप सञ्चित होजाते हैं तव वह कर्म ही निमित्तों से कर्मफल भुगताने में स्वतंत्र हो जाते हैं.

आरियाः—भला जी ! कोसी पुरुष ने कर्म किया कि जमीन पर एक लकीर खैंच दी; अव वह लकीर उसे कर्मफल देगी ?

जैनीः—अरे भोले! क्या तुम 'क्रिया' को 'कर्म' मानते हो ? लकीर खैंचना तो एक 'क्रिया' है; और 'कर्म' तो यहां 'क्रियाफल' को कहा है अर्थात् जिस इच्छा से वह लकीर खैंची है; यथा (जैसे) कीसी पुरुषने कहा कि मेरी तो वात पत्थर की लकीर है, यों कहते हुए नें लकीर खैंच दी; और किसी पुरुषने कहा कि एक वार तो उसकी ग्रीवा (गर्दन)

पर छुरी फेर ही देनी है; ऐसे कहते हुए ने लकीर खैंच दी; अब यह लकीर खेंचने की क्रिया तो दोनों ही की एकसी है,परन्तु इच्छा (इरादे) दोनों के पृथक् २ (न्यारे २) हैं. इस इच्छा की आकर्षण शक्ति से एक प्रकार का सूक्ष्म मादा अन्तःकरण रूपी मेद में इकट्ठा हो जाता है, उसको हम "कर्म." कहते हैं; जिसको अन्यमतानुयायी (और मतों वाले) लोग भी 'सञ्चित कर्म' कहते हैं, सञ्चित के अर्थ ही, किसी वस्तु के इकट्ठे करने के हैं.

आरियाः—कर्म का फल कर्मों के कारण रूप होनेसे ही भोगा जाता है ईश्वर नहीं भुगताता है, यह तुम युक्ति (दलील) से ही कहते हो वा किसी शास्त्रका भी लेख है?

जैनीः—तुम लोग तो शास्त्रों को मानते ही नहीं हो. तुम तो केवल युक्ति (दलील) को ही मान ते हो. यदि शास्त्रों को मानो तो शास्त्रों

में जैन मत के तथा अन्य [और] मतों के शा-
स्त्रों में भी पूर्वोक्त कथन लिखा है.

आरिया:—किस प्रकार से ?

जैनी:—जैन सूत्र श्री उत्तराध्ययन;२० वें अध्ययन ३७ वीं गाथा में लिखा है:—

गाथा.

अप्पा कत्ता विकत्ताय दुहाणय
सुहाणय अप्पामित्त ममित्त च;
दुप्पाट्ठिउ सुप्पाट्ठिउ ॥ ३७ ॥

अपनी आत्मा अर्थात् जीव ही कर्त्ता है, जीव ही विकर्त्ता विनाश काय अर्थात् कर्मों को भोग के निष्फल करता है; किसको कर्त्ता भोगता है दुष्ट कर्मों का फल दुःखों के तांई और श्रेष्ठ कर्मों का फल सुखों के तांई आत्मा ही मित्र रूप सुख देने वाली होती है. आत्मा ही शत्रु रूप दुःख देने वाली होती है. परन्तु किसी दुष्ट संग अथवा दुर्मति के

प्रयोग से दुष्ट कर्मों में स्थित हुए २ और सत्संग शुभ मति के प्रयोग से श्रेष्ठ कर्मों में स्थित हुए २ अर्थात् यह जीव नये कर्म करने में स्वतंत्र है; और पश्चात् काल पूर्व जन्मांतर में कर्मों के वश परतंत्र होके भोगता है; अर्थात् जो कर्म योगों से (इरादों से) किया जावे वह नूतन कर्म होता है, उसका फल आगे को होता है. और जो कर्म बिना इरादे से आप ही हो जावे वह पुराकृत—सञ्चित कर्म का फल भोगा माना जाता है; उसका फल आगे को नहीं होता. यथा किसी एक मनुष्य ने एक ईंट बेमौका पम्भी देख कर अपने घर से बाहर को सहज भाव से फैंक दी, परन्तु वह किसी पुरुष की आंख में जा लगी; उसकी आंख फूट गई तो बडा शोर मचा और उसके घर के कहने लगे कि, अरे तैने ईंट मार के ही आंख फोम्ड दी, वह कहने लगा कि, नहीं जी! मैने तो बे खयाल फैंकी थी, इसके

जा लगी. मेरे क्या वश की बात है ? अब सोचो कि वह और उस के घर के उस ईंट मारने वाले के शत्रु हो जावें वा नालिश करें, अथवा मुकद्दमें में जेहलखाना होवे, अपितु नहीं ? बस ! यही कहेंगे कि यह प्रारब्धी मामला है, इसकी आंख इसके हाथ से फूटनी थी. अब देखो ! उस आंख फोड़ने का आगे को कुछ भी फल न हुआ, क्यों कि यह बिना इरादा, पूर्व कृत संचित कर्म का फल परतंत्रता से भोगा गया. हां ! इतना तो अवश्य कहना होगा कि, अरे मूर्ख! तूने बुद्धि (अकल) से ईंट क्यों ना फैंकी ? यदि वह आंखो के फोड़ने के इरादे से ईंट मारता तो चाहे आंख फूटती न फूटती परन्तु उसका फल आगे को अवश्य ही इस लोक में तो जुर्माना (जेहलखाना) आदिक होता, और परलोक में आंख फूटनें आदिक का दुःखदायी फल होता.

आरिया:—यों तो लोगों में अनेक प्रकार के कार विहार में, चलने, फिरने आदिक में बिना इरादे जीव हिंसा आदि हो जाती है तो क्या उसका दोष नहीं होता ?

जैनी:—दोष क्यों नहीं? आचार विचार का उपदेश जो शास्त्रो में कहा है,उसका तात्पर्य्य यही है कि अज्ञान अवस्था में (गफलत में) रहना अवश्य ही सर्वदा दोष है.

तथा किसी ने स्वतंत्र आप ही चोरी करी,फिर वह पकड़ा गया, मुकद्दमा हो कर जेहलखाने का हुक्म हुआ, तब वह चोर अपना माथा ठेरता है कि मेरी प्रारब्ध. तो उसे बुद्धिमान् पुरुष यों कहेंगें कि अरे ! प्रारब्ध बेचारी क्या करे ? तैंने हाथों से तो चोरी के कर्म किये,अब इनका फल तो चाखना ही पड़ेगा. यदि कोई शाहूकार भला पुरुष है और उसको अचानक ही चोरी का कलंक लग गया, और मुकद्दमा होनै पर जेहलखाने में

भेजा गया, तो माथा ठकोरे कि मेरी प्रारब्ध; तो लोग भी कहेंगे, कि बेशक ! यह पूर्व कर्म का फल है. इसने चोरी नहीं की अब उसको पूर्व जन्म के किये हुए सञ्चित कर्मों का, निमित्तों से दुःख भोगवना पड़ा. परन्तु उसे आगे को दुर्गति भी भोगनी पड़ेगी, अपि तु नहीं.

तथा किसी अच्छे कुल की स्त्री विधवा आदिक ने अनाचार सेवन किया तब लोग निन्दा कर के दुरगच्छने लगे (फिटलानत देने लगे) तब, वह कहने लगी कि, मेरी प्रारब्ध; तो लोग कहने लगे कि प्रारब्ध बेचारी क्या करे ? जब तुझे स्वतंत्रता से कुकर्म (खोटे कर्म) मंजूर हुए. यदि किसी सुशीला स्त्री को किसी दुष्ट ने लाञ्छन लगादिया कि यह व्यभिचारिणी है, तो वह कहती है कि मेरी प्रारब्ध, तो उसका यह कहना सत्य है, क्यों कि उसने कुकर्म नहीं किया-उस-

के पूर्व कर्म के उदय से निन्दा हुई. परन्तु उस निन्दा के होने से क्या वह दुर्गति (खोटी-गती) में जायगी ? अपि तु नहीं.

हे भव्य जीवो ! इस प्रकार से प्राणी स्वतंत्रता से नये कर्म करता है, और परतंत्रता से पुराने कर्म भोगता है; और इसी प्रकार सांसारिक राजाओं के भी दण्ड देने के कानून है कि जो इरादे से खून आदि कसूर करता है उसे अख्तियारी नया कर्म किया जान के दण्ड देते हैं और जो बिना इरादे कसूर हो जाय तो उसे वे अख्तियारी अमर जान कर छोड़ देते हैं. इस रीति से पूर्वोक्त कर्म, कर्म का फल भुगताते हैं.

और ऐसे ही चाणक्य जी अपनी बनाई हुई लघुचाणक्य राज नीति के आठ वें अध्याय के ५वें श्लोक में लिखते हैं:—

श्लोक.

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता,

परोददातीति कुबुद्धि रेषा ।
पुराकृतं कर्म तदेव भुज्यते,
शरीर कार्यं खलुयत्त्वया कृतम् ॥५॥

अर्थः—"सुख का और दुःख का नहीं है कोई दाता (देनेवाला); और कोई ईश्वरादिक, वा पुत्र, पिता, शत्रु मित्र का दिया हुआ सुख दुःख भोगता हूं, इति (ऐसे) जो माने उसकी एतादृशी कुबुद्धि (कुत्सितबुद्धि) है. तो फिर किसका दिया सुख दुःख भोगता है? पुराकृतम् अर्थात् पहिले किये हुए जो सञ्चित कर्म हैं, 'तदेव भुज्यते' अर्थात् तिसीका दिया हुआ सुख दुःख भोगता है. 'शरीर कार्यम्' अर्थात् सूक्ष्म शरीर अन्तःकरण रूप स्थूल शरीर के निमित्त से अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा भोगता है. 'खलु इति निश्चयेन (त्वया) तेरे करके (कृतम्) किये हुए हैं.

और ऐसे ही यूनानी हिक्मत की किताब में भी लिखा हुआ है, (अरब्बी में):—

"ऐसा लि मुजरक बजात मुतसर्र फबा इलात"
इसका अर्थ ये हैः—चेतन दर्याफत करने वाला है अपने आपसे, कबजा रखने वाला है साथ औजारों के. यह भी पूर्वोक्त अर्थ के साथ ही मिलता है.

ऐसे ही ' मनुस्मृति,अध्याय ८वें और श्लोक ८४ मैं लिखा है कि, आत्मा अपना साक्षी (गवाह) और आश्रय भी आपही है.

श्लोक.

आत्मैवात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः ।
मावमंस्थाःस्वमात्मानं नृणां साक्षिण मुत्तमम् ॥

अर्थ टीकाः—यस्माच्छु भा शुभ कर्म प्रतिष्ठा आत्मैवात्मनः शरणं, तस्मादेवं स्वमात्मानं नराणां मध्यमा उत्तमं साक्षिणं मृषाभि ज्ञाने नावज्ञासि

और ऐसे ही 'लोकतत्व निर्णय' ग्रंथ में

लिखा है कि यह कृत कर्म (किये हुए कर्म) अन्तःकरण रूपी निधान में जमा रहते हैं; और वही फल भुगताने में मति को प्रेरणा करते हैं. यथा—

श्लोक.

यथा यथा पूर्व कृतस्य कर्मणः
फलं निधानस्थमिवोपतिष्ठते;
तथा तथा तत्प्रति पादनोद्यता,
प्रदीप हस्तेव मतिः प्रवर्त्तते ॥१६॥

यथा 'कृष्ण गीता' अध्याय ५वें श्लोक १४ वें में लिखा है:—

श्लोक.

नकर्तृत्वं नकर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
नकर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्त्त ते ।१४।

हे अर्जुन ! प्रभु देहादिकों के कर्तृत्व को नहीं उत्पन्न करे है, तथा कर्मों को भी नहीं

उत्पन्न करे है तथा कर्मों के फल के संबंध को भी नहीं उत्पन्न करे है; किन्तु अज्ञान रूप मोह ही कार्य के करने विषे प्रवृत्त होवे है.

यथा 'शान्ति शतके, श्री सिल्हन कवि संकलित आदि काव्ये:—

श्लोक.

नमस्यामो देवान् ननु हन्त विधेस्तेऽपि वशगाः
विधिर्वंद्यः सोऽपि प्रतिनियत कर्मैकफलदः।
फलं कर्मायत्तं किम मरगणैः किञ्चविधिना
नमस्तत्कर्मेभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति॥१

इसका अर्थ यह है कि, ग्रंथकर्त्ता ग्रंथ के आदि में मंगलाचरण के लिये देव को नमस्कार करता है. फिर कहता है की, वह देवगण भी तो विधि ही के वश है तो विधि ही की वन्दना करें. फिर कहता है कि विधि भी कर्मानुसार वर्ते है. तो फिर देवों को नमस्कार करने से क्या सिद्ध होगा? और

विधि कि वन्दना करने से क्या होगा ? हम उन्हीं कर्मों को नमस्कार करते हैं कि जिन पर विधाता का भी प्रभवत्व अर्थात् जोर नहीं है.

और कई लोग दुःख दर्द में ऐसे कह देते हे कि, 'मर्जी ईश्वर की' ! सो यह भी एक पर्यायवाची कर्म ही का नाम है; यथा ' नाम माला ' तथा ' लोक तत्व निर्णय ':—

श्लोक.

विधिर्विधानं नियतिः स्वभावः ।
कालो ग्रहा ईश्वर कर्म दैवम् ॥
भाग्यानि कर्माणि, यम.कृतांत ।
पर्याय, नामानि पुराकृतस्य ॥

अर्थ—१ विधिः (विधना) २ विधाता,विधान, ३ नियतिः (होनहार) ४ स्वभाव, ५ काल, ६ ग्रह, ७ ईश्वर, ८ कर्म ९ देव, १० भाग, ११ पुण्य, १२ यम, १३ कृतान्त, यह

सब पुराकृत कर्म ही के पर्याय वाचक नाम हैं. इत्यादि बहुत स्थान शास्त्रों में कर्मफल कर्मों के निमित्त से ही भोगना लिखा है. ईश्वर नहीं भुगताता है, निष्प्रयोजन होने से; परन्तु पक्ष के जोर से, पूर्व धारणा के अनुकूल मति अर्थ को खेंचती है, यथा १९५४ के छपे हुए सत्यार्थ प्रकाश के ७वें समुल्लास २३० पृष्ठ पंक्ति १२वी १३में लिखा है:-"ईश्वर स्वतंत्र पुरुष को कर्म का फल नहीं दे सकता, किन्तु जैसा कर्म जीव करता है वैसा ही फल ईश्वर देता है" इति. अब देखिये! पूर्वोक्त कारण, न तो ऐसा लिखना चाहिये था कि जैसा कर्म जीव करता है वैसा ही फल होता है.

आरियाः—अजी! आपने प्रमाण (हवाले) दिये सो तो यथार्थ हैं; परन्तु हम लोगों को यह शंका है कि कर्म तो जड़ हैं; यह फलदायक कैसे हो सकते हैं? अर्थात् जड़ क्या कर सकता है?

जैनीः—जम तो जमवाले सब ही काम कर सकता है; क्यों कि जम न्नी तो कुच्छ पदार्थ ही होता है. जब पदार्थ है तो उसमें उसकी स्वन्नाव रूप शक्ति न्नी होगी; अर्थात् अग्नि में जलाने की और विष (जहर) में मारने की, जल में गलाने की, मिकनातीस चमकपत्थर में सूई खैंचने की, मदिरा (शराब) में बेहोश करने की, इत्यादिक. यथा-दृष्टान्तः—शराब की बोतल ताक में धरी है, अब वह शराब अपने आप किसी पुरुष को न्नी नशा नहीं दे सकती: क्यों कि वह जम है-परतंत्र है. फिर उसी बोतल को उठा कर किसी पुरुष ने अपनी स्वतंत्रता से पी लिया, क्यों कि वह पुरुष चेतन है—शराब के पीने में स्वतंत्र है; चाहे थोमी पीये, चाहे बहुती पीये, चाहे नाहीं पीये. परन्तु जब पी चुका तब वह शराब अपना फल देने को (बेहोश करने को) स्वतंत्र हो गई. और वह पीने वाला शराब

के वश-परतंत्र हो गया. क्यों कि वह नहीं चाहता है कि मेरे मुख से दुर्गन्धि आवे, आंखों में लाली आवे, और ऐरगैर वात मुख से निकले, घुमेर आकर जमीन पर गिर पड़ूं; परन्तु वह शराब तो अपना फल (जौहर) दिखावेगी ही; अर्थात् दुर्गन्धि भी आवेगी, आंखे भी लाल होगी, और ऐरगैर बातें भी मुख से निकलेंगी, घुमेर आकर मोरी में भी पड़ेगा, और शिर भी फूटेगा, मुख में कुत्ते भी मूत्र करेंगे. अब कहो वेदानुयायी पुरुषो! यह कर्त्तव्य जड़ के हैं अथवा चेतन के? वा ऐसे है कि जब पुरुष ने शराव पी तब तो पुरुष को स्वतंत्र जान के ईश्वर उसके लिहाज से चुप हो रहा, फिर पीनेके अनन्तर (बाद) फल देने को अर्थात् पूर्वोक्त बेहोशी करने को ईश्वर तैयार हो गया? क्यों कि शराब तो जड थी. बस! यों नहीं. वही शराव पुरुष की स्वतंत्रता से ग्रहण की हुई मेद में मिल कर

वह जड ही अपने खेल खिलाती है. ऐसे ही जीव भी स्वतंत्रता से कर्म करता है. फिर वही कर्म पूर्वोक्त अन्तःकरण में सञ्चित हो कर (जमा हो कर) इस लोक अथवा परलोक में अन्तःकरण की प्रकृतियों को बदलने की शक्ति रखते हैं. और उन प्रकृतियों के बदलने से अन्तःकरण में अनेक शुभ--अशुभ, संकल्प उत्पन्न (पैदा) होते हैं. यथा भर्तृहरि 'नीतिशतक':—

श्लोक.

कर्मायत्तं फलं पुंसां, बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।
तथापि सुधिया भाव्यं, सुविचार्य च कुर्वता ॥

उन संकल्पों के वश हो कर जीव अनेक प्रकार की हिंसा, मिथ्या आदि क्रिया करता है, फिर राजदण्ड, लोकभण्ड, हर्ष-शोक आदि के निमित्तों से भोगता है.

आरिया:—भलाजी ! परलोक में कर्म कैसे जाते हैं ? क्यों कि जिस शरीर से कर्म

किये हैं वह शरीर तो यहां ही रह जाता है तो फिर ईश्वर के विना उन कर्मों को कौन याद करवाता है ? जिस करके, वह कर्म भो-गे जावें.

जैनीः—क्या, तेरा ईश्वर जीवों के कर्म याद कराने के वास्ते कर्मों का दफ्तर लिख रखता है ? यदि ईश्वर एक २ जीव के कर्म याद कराने लगे तो ईश्वर को असंख्य-अन-न्त काल तक भी वारी न आवेगी. और उन जीवोंको अपने किये कर्म का भुगतान अन-न्त काल तक भी न होगा, क्यों कि संसार में जीवों की अनन्तता है.

आरिया—तो फिर कैसे कर्म भोगा जाय ?

जैनः—अरे भोले भाई ! हम अभी ऊपर लिख आये हैं, कि सञ्चितकर्म अन्तःकरण में जमा सो इस जीव की स्थूल

देह तो आयु कर्म के अन्त में यहां ही रह जाती है; परन्तु सूक्ष्म देह (अन्तःकरण) तो परलोक में भी जीव के संग ही जाती है. उस अन्तःकरण के शुभ-अशुभ होने से जीव की शुभ अशुभ योनि में खैंच हो जाती है. जैसे दृष्टान्त है कि, चमक पत्थर तो यहां और मुनासिब अन्दाजा के अनुकूल फासले से सूई वहां परन्तु खैंच हो कर मिल जाते हैं, क्यों कि वह पत्थर भी जड़ है और सूई भी जड़ है, परन्तु उस जड़ की उस अवस्था में खैंच का और मिलने का स्वभाव है; और कोई तीसरा ईश्वर वा भूत उन्हे नहीं मिलाता है. ऐसे ही जीव का अन्तःकरण भी जड़ है, और जिस योनि में जा कर पैदा होने वाले कर्म हैं, उस योनि की धातु भी जड़ है; परन्तु उनकी शुभ अशुभ अवस्था मुकाबले की होनेसे पूर्वोक्त खैंच हो कर पैदा होने का स्वभाव होता है-चाहे लाखों कोस

क्यों न हो यथा वर्तमान काल में जैपुर आ-
दिक बडे २ नगरों में एक किस्म के मसालो-
की बत्तीयें वाली लाल टेनें लग रहीं है और
नगर के बाहर उसी प्रकार के (मुकाबले के)
मसाले के बम्बो में से कला के जोर धूंआं
निकल हरेक स्थान नगर में विस्तर होता है
परंतु उस मसाले की लाग के प्रयोग लाल
टेंन की बती को ही प्रकाश देता है और को नहीं
ऐसे ही पूर्वोक्त अंतःकरण में कर्म रूप मसा-
ला और योनी की धातुकी यथा प्रकार होने
से उत्पत्ति होती है. और उसी अन्तकरण को
जैन में तेजस कारमाण सूक्ष्म शरीर कहते हैं.
तो उस तेजस कारमाण के प्रयोग से माता-
पिता के रज, वीर्य अथवा पृथिवी और जल
के संयोग से शीत-उष्ण के मुनासिब होने के
निमित्तों से स्थूल देह जाति रूप वाला बन
जाता है, जैसे मनुष्य से मनुष्य, पशु से पशु,
घोडे से घोडा, बैल से बैल, अथवा गेहूं से गे-

हुं, चणे से चणे, इत्यादि. और कई एक मूर्ख लोग एसे कहते हैं कि, कर्म (प्रकृति) से देह बनता है तो आंख के स्थान कान, और कान की जगह हाथ आदिक प्रकृतियें क्यों नहीं लगा देती हैं? उत्तरः–अरे भोले! प्रकृति तो जरू है. यह तो बेचारी आंख की जगह कान क्या लगा देगी? परन्तु तुम्हारा ईश्वर तो परम चेतन कर्त्तमकर्त्ता है, वह क्यों नहीं कान की जगह बाहु लटका देता, और किसी के दो आंखें और पीछे को लगा देता? जिस से मनुष्य को विशेष (बहुत) लाभ पहुंचता; कि आगे को तो देख कर चलता और पीछे को भी देखता रहता कि कोई सर्प आदिक अथवा शत्रु आदिक पीछा न करता हो, और लोग भी महिमा करते कि धन्य है ईश्वर की लीला किसी के दो आंखे और किसी के तीन वा चार लगा दी हैं. परन्तु तुम्हारा ईश्वर तो चेतन हो कर भी ऐसे नहीं करता है.

तर्कः—अरे मूढ! ऐसे करे कैसे? ई-श्वर तो कर्त्ता ही नहीं है. यह तो अनादी भाव है. जाति से जाति, अर्थात् जैसी योनि में जाने के कर्म जीव से बने होवें, वैसी ही योनि में उत्पन्न हो कर उसी योनि वाले रूप में होता है. हां! जीव की कोई योनि, जाति नहीं है. इस से पूर्वोक्त कर्मानुसार कभी नर्क योनि में, कभी पशु वा मनुष्य वा देवयोनियों में परिभ्रमण करता चला आता है.

आरियाः—क्यों जी! पहिले जीव हैं कि कर्म हैं?

जैनीः—यह प्रश्न तो उनसे करो जो जीव और कर्म की आदि मानते हों. वही व-तावेंगे कि प्रथम जीव है वा कर्म. जैन में तो जीव और कर्म अनादि समवाय सम्बंधी माने हैं; तो आदि (पहिले) किसको कहें? क्यों कि पहिले हुई तो आदि हुआ.

आरिया:—तो फिर तुम्हारे कथनानुसार जीव की कर्मों से मोक्ष न होनी चाहिये; क्यों कि जिसकी आदि ही नहीं है उसका अन्त भी नहीं है. तो फिर तुम्हारे तप-संयम का क्या फल होगा,

जैनीः—अरे! यह तो तर्क हमारी ही तर्फ से संभव है; क्यों कि तुम तो मोक्ष में भी कर्म मानते हो. उन कर्मों से फिर वापिस आकर जन्म होना मानते हो. परन्तु तुमको पदार्थ के संपूर्ण भेदों की खबर नहीं है. सुने सुनाये कहीं २ से कोइ २ अंग जान लिया; 'मेरे बैंगन तेरी गठ!' बस एक सुन लिया अनादि, अनन्त, जिस की आदि नहीं उसका अन्त भी नहीं; परन्तु सूत्र में पदार्थ के चार भेद कहे हैंः-प्रथम अनादि-अनन्त; (२) अनादि सान्त; (३) सादि-सान्त, और (४) सादि-अनन्त.

आरिया:-इनका अर्थ भी कृपापूर्वक बता

दीजिये, जो हमारी बुद्धि (समझ) में आ जाय.

जैनी:—तुम समझो तो बहुत अछा है; समझाने ही के लिये तो परिश्रम किया गया है—न तुटकों के वास्ते; क्यों कि हम निग्रंथि साधु धर्म में हैं; हमारे मूलसंयम यह हैं कि कौ-डी पैसा आदिक धातु को न रखना, बल्कि स्पर्श मात्र भी न करना; और पूर्ण ब्रह्मचर्य्य अर्थात् सर्वदा (हमेशा) यतिपन में रहना; सो परोपकार के लिये ही लिखा जाता है; के-वल (सिर्फ) मान बडाई के ही लिये नहीं है. अब सुनीये! (१) अनादि-अनन्त, तादात्मिक सम्बंध को कहते हैं; (२) अनादि-सान्त, स-मवाय सम्बंध के कहते हैं; (३) सादि-सान्त, संयोग सम्बंध को कहते हैं; (४) सादि-अनन्त, अबन्ध को कहते हैं. इसका अर्थ यह है:—

(१) 'तादात्मिक सम्बध' वह होता है कि चेत-न में चेतनता, जड में जडता; अर्थात् चेतन पहि-ले भी चेतन था, अब भी चेतन हैं; आगे को

भी चेतन ही रहेगा, चेतन तो कभी जड नहीं होगा और जड़ कभी चेतन नहीं होगा; यथा दृष्टान्तः-लाल में लाली. और हीरे में सफैदी, इत्यादि पदार्थ की असलीयत को 'तादात्मिक सम्बन्ध' कहते हैं.

(७) 'समवाय सम्बंध' उसे कहते हैं की जो वस्तु तो दो होवें और स्वतःस्वभाव सेही अनादि मिली मिलाई होवे; यथा जीव और कर्म.जीव तो चेतन और कर्मों का कारण रूप अन्तःकरण अर्थात् सूक्ष्म शरीर जड़, यह पदार्थ तो दो हैं, परन्तु अनादि शामिल हैं.जीव का अन्तःकरण (सूक्ष्म शरीर) अनादि समवाय सम्बंध ही है, और जो जो कर्म करता है सो निमित्तों से करता है, अर्थात् सुरत इन्द्रिय आदि कों से फिर वह निमित्तिक कर्मों का फल निमित्तों से भोगता है. ऐसा ही यह सिलसिला चला आता है.सो जो यह जीव अनादि-सान्त कर्म वाले हैं, उनमें से देशकाल शुध्द मिलने पर

धर्मपरायण होने से कर्म रहित हो जाते हैं, अर्थात् सर्व आरंभ के त्यागी हो कर नये कर्म नहीं करते हैं, तब पूर्वोक्त अन्तःकरण (सुक्ष्म शरीर) फट जाता है, और निर्मल चेतन कर्म से मुञ्चित (मुक्त) होकर अर्थात् बंधसें अबंध हो कर पूर्वोक्त मोक्ष पद को प्राप्त हो जाता है यथाः—

श्लोक.

चेतनोऽध्यवसायेन कर्मणा च संबध्यते ।
ततो भवस्तय भवेत्तदभावात्परं पदम् ॥

चेतन (आत्मा) अध्यवसाय (वासना) से कर्म से बंधायवान् होता है; तिससे तिसको संसार अर्थात् जन्म-मरण प्राप्त होता है; और जिसके संसार अर्थात् जन्म-मरण का अभाव हो जाता है वह जीवात्मा परमपद (मुक्ति) को प्राप्त हो जाता है.

यथा दृष्टान्त है कि—फूल में सुगंधि औ-

र तिलों में तेल, दूध में घी, धातु में कुधातु, इत्यादि स्वतः ही मिले मिलाये होते हैं; किसी तीसरे के मिलाये हुए नहीं हैं. परन्तु किसी समय यंत्र (कोल्हू) के, और विलोनी के, और ऐहरन के प्रयोग से अलग२ हो जाते हैं.

(३) 'संयोग संबंध' उसे कहते हैं जो दो वस्तु अलग२ होवें और एक तीसरे मिलाने वाले के प्रयोग से मिलें, फिर समय पाकर विछड़ जावें, क्यों कि जिस के मिलने की आदि होगी वह अवश्य ही विछड़ेगा; यथा दृष्टान्त है कि, तख्ते और लोहे (कील) से तख्त, वस्त्र, और रंग से रंगील, इत्यादि तीसरे के संयोग मिलाने से मिलते हैं; अर्थात् तरखान के और ललारी के और दूसरा संयोग सम्बंध तीसरे के विना मिलाये भी होता है. जैसे परमाणु रूखे चिकने की पर्याय यथा प्रमाण मिलने का स्वभाव होता है. दृष्टांन्त-

संध्या, राग, बादल, इन्द्र धनुष, आदिक मिलने-बिछड़ने का.

(४) 'अबंध' उसे कहते हैं, जो अनादि जड़ रूप अन्तःकरण, जिसके लक्षण अज्ञान मोहादि कर्म उनके बंधन से चेतन का छुटकारा हो जाना, अर्थात् मोक्ष हो कर परमेश्वर रूप हो जाना, अर्थात् अजर, अमर, कृत-कृत्य (सकलकार्यसिद्ध), सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्वानन्द पद में प्राप्त होना, पुनरपि (फिर) कर्मों के बंधन में न पड़ना, अर्थात् जन्म—मरण रूप आवागमन से रहित हो जाना, जिसको जैन में 'अप्पुणरावत्ती' पद कहते हैं, और 'वैष्णव गीता' अध्याय ५ वें श्लोक १७ वें में लिखते हैं.

श्लोक.

गच्छन्त्य पुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः॥

इसका अर्थ यह है:—'गच्छन्ति' जाते हैं जीव वहां यहां से, 'अपुनरावृत्तिं' फिर नहीं आवें

संसार में, 'ज्ञान' ज्ञान रूप हो जाता है. 'निर्धूतकल्मषाः' झाडके अनादि कल्मष (कर्मदोष)—इत्यादि.

अब समझने की बात है कि वह कर्म-दोष, राग द्वेष, मोहादि झाडे, तो वह कर्म कुछ जड पदार्थ होगा तब ही झाडा गया, न तु क्या झाडता? सो इस प्रकार से अबंध-पद को सादि-अनन्त कहते हैं; अर्थात् जिस दिन चेतन कर्मबंध से मुक्त हुआ वह उसकी आदि है और फिर कभी कर्मबंधन में न आना, इस लिये अनन्त है. और जैन सूत्र भगवतीजी—प्रज्ञापनजी में पदार्थों के चार भेद इस प्रकार से भी कहे हैं.

गाथा.

(१) अणाइआ अपजवसीया, (२) अणाइआ सपजवसीया(३)साइआ अपजवसीया; (४) साइआ सपजवसीया. इसका अर्थ पूर्वोक्त ही समझना.

अब जो दूसरा अनादि-शान्त समवाय सम्बंध कहा था सो जीव और कर्म के विषय में जान लेना, क्यों कि तुम्हारा प्रश्न यह था कि कर्मों की आदि नहीं है तो अन्त कैसै होवे? इसका उत्तर इस दूसरे सम्बंधके अर्थ से खूब समझ लेना और इन पूर्वोक्त अधिकारों के विषय में सूत्र, प्रमाण, युक्तिप्रमाण बहुत कुछ लिख सकते हैं और लिखने की आवश्यकता (जरूरत) भी है; परन्तु यहां विशेष परिश्रम करने को सार्थक (फायदेमन्द) नहीं समझ गया, क्यों कि पण्डित जन बुद्धिमान् निरपक्ष दृष्टि से बाचेंगे तो इतने में ही बहुत समझ लेंगे, और जो न समझेगें वा पक्ष रूपी वृक्ष को ही सींचेंगे तो चाहे कितने ही लिख२ कागज काले कर२ पोथे भरो, क्या फल होगा? यथा 'राजनीति' में कहा है:—

श्लोकः

बुद्धिबोध्यानि शास्त्राणि न बुद्धिः शास्त्रबोधिका ।
प्रत्यक्षेऽपि कृते दीपे चक्षुर्हीनो न पश्यति ॥

इसका अर्थ सुगम ही है. असली तात्पर्य तो यह है कि पदार्थ ज्ञान हुए बिना कर्त्ता-विकर्त्ता के विषय का भ्रम दूर होना बहुत कठिन (मुशकिल) है.

आरियाः—अजी! पदार्थ ज्ञान किसे कहते हैं?

जैनीः—जैन शास्त्रों में दो ही पदार्थ माने गये हैं; चेतन और दूसरा जड़. सो चेतन के मूल दो भेद हैं: (१) प्रकट चेतना कर्म रहित सिद्धस्वरूप परमेश्वर; (२) अनंत जीव सांसारिक कर्म बंध सहित.

दूसरे जड़ के भी मूल दो भेद हैं: (१) अरूपी जड़ (आकाश, काल आदिक); (२) रूपी जड़, जो पदार्थ दृष्टि गोचर (देखने में) आते

है. इन सब पदार्थों का उपादान कारण 'परमाणु' है. अनंत सूक्ष्म परमाणुओं का एक बादर स्थूल परमाणु होता है, जिसको 'पुद्गल' कहते हैं. सो इन पुद्गलों का स्वभाव सूक्ष्म, स्थूल, शुभ, अशुभपन को द्रव्य--क्षेत्र-काल-भाव के निमित्तों से परिणाम जाने का अर्थात् बदल जाने का होता है; अर्थात् द्रव्य तो पृथिवी, जल आदिक; क्षेत्र (जगह); और काल, ऋतु (मोसम); भाव, गेहूं से गेहूं और चणे से चणे और तृण आदि का उत्पन्न होना, और उनमें एकेन्द्रियपन वनस्पति योनि वाले जीव और जीव के कर्म इत्यादि से यथा पृथिवी और जल के संयोग से घास उत्पन्न होता है; घास को गौने खाया; उस गौ की मेद की कलों से घास का दूध बनता है; दूध को मनुष्य ने मिशरी माल कर पीया; तब मनुष्य के मेद की कलों से उस दूध से सात धातु बनते हैं; और विष्ठा (मलमूत्र) भी ब-

नता है; फिर उस मल की मिट्टी हो जाती है; फिर उस मीट्टी के प्रयोग से खरबूजे आदिक फल हो जाते हैं; फलों को खा कर फिर विष्ठा, फिर मिट्टी, फिर फल इत्यादि शुभ अशुभ पर्याय पलटने का स्वभाव होता है. और पुद्गल के मूल धातु चार हैं:— १ वर्णमय, २ गंधमय, ३ रसमय, ४ स्पर्शमय. इन चारों धातुओं के मिलने से पुद्गल की चार प्रकार की पर्याय में से पर्याय पलटती हैं:—१ गुरु, २ लघु, ३ गुरुलघु, ४ अगुरुलघु. जब गुरुपर्याय को पुद्गल प्राप्त होता है तब किस रूप में होता है? यथा पत्थर धातु आदिक; अर्थात् धातु की और पत्थर की गोली वजन में ५ रत्ती की भी होगी, उस को दरिया के जल पर धर देवें तो वह अपनी गुरु अर्थात् भारी पर्याय के कारण से जल में डूब कर तले में जा बैठेगी. और दूसरा लघु पर्याय वाला पुद्गल, काष्ठ आदिक;

अर्थात् तोल में पचीस मन का काठ का पोरा होगा, वह भी लघु अर्थात् हलू की पर्य्याय के कारण से जल पर तैरता ही रहेगा. अब सोच कर देखो कि कहां तो ५ रत्ती भर बोझ; और कहां २५ मन? परन्तु पर्याय का स्वभाव ही है.

आरियाः—अजी! स्वभाव भी तो ईश्वर ने ही बनाये हैं!

जैनी:—अरे भोले! तूं इतने पर भी न समझा. यदि ईश्वर का बनाया स्वभाव होता तो कभी न पलटता. परन्तु हम देखते हैं कि उस ५ रत्ती भर धातु की मनुष्य चौफी कटोरी बना कर जल पर रख देवे तो तैरने लगे, और काष्ठ को फूंक कर भस्म (राख) को जल में घोल देवें तो नीचे ही जा लगेगी. अब क्या ईश्वर का किया हुआ स्वभाव मनुष्य ने तोड़ दिया? अपि तु नहीं, यह तो क्रिया विशेष करने से भी मिशरी के कूजों के

रवों की भान्ति पर्याय पलट जाती है. यथा दूध से दहीं इत्यादि.

(३) गुरु-लघु सो वायु (पवन) आदिक (४) अगुरु—लघु सो परमाणु आदिक संख्यात आकाश परदेशोवगाढ सूक्ष्म खंध इत्यादि. और यह भी समझना आवश्यक (जरूरी) है कि जिसका नाम परमाणु अर्थात् परे से परे छोटा, जिसके दो भाग न हो सकें ऐसे अनन्त परमाणु मिल कर एक स्थूल पदार्थ दृष्टिगोचर (नजर में आनेवाला) बनता है. यथा दृष्टान्तः—६ मासे भर सुरमे की डली जिसको मनुष्य ने खरल में डाल कर मूसल का प्रहार किया, [चोट लगाई] तो उसके कई एक खण्ड (टुकडे) हो गये. ऐसे ही मुसल लगते२ जब बहुत छोटे टुकडे हो गए और मूसल की चोट में न आये तो रगडना शुरूकिया; तीन दिन तक रगडा. अब कहोजी! कितने खण्ड(टुकडे)हुए? परन्तु जितने वह टु-

कड़े हो गये हैं उनमें से भी एक२ टुकडे के कइ२ टुकड़े हो सकते हैं. क्योंकि उसी सुरमे को यदि तीन दिन तक और पीसें तो बारीक होवे वा नहीं होवे? तो बारीक जब ही होगा जब एक के कई टुकड़े हों; ऐसे ही २१ दिन तक रगड़ा, तो कैसा बारीक हुआ! उसमें जरा अङ्गुली लगा कर देखें तो कितना सुरमा अर्थात् कितने खण्ड (टुकडे) अङ्गुली को लगें! किशोर. हां, अब एक टुकड़े को अलग करना चाहें तो किया जावे,कर तो लिया जावे; परन्तु ऐसा बारीक औजार नहीं है, और वह खंड वा टुकड़ा भी अनन्त परमाणुओं का समूह (पिंड) होता है. क्यौंकि वह दृष्टि में आ सकता है, और उन परमाणुओं में वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, भी है, मिलने-बिछड़ने का स्वभाव भी है. क्यों कि नये-पुराणे होने की पर्याय भी पलटती रहती है, और इन परमाणु आदि पदार्थों का अधिक स्वरूप देख-

ना होवे तो श्रीमद्भगवतीजी--प्रज्ञापनजी आदिक सूत्रों में गुरु आम्नाय से सुन कर और सीख कर प्रतीत (मालूम) कर लो. परन्तु पदार्थ का पूर्ण (पूरा) २ ज्ञान होना बहुत कठिन है. क्यों कि प्रत्येक (हरएक) जैनी भी बहुत काल तक पढते रहें तो भी नहीं जान सकते हैं; कोई२ विद्वान पुरुष ही जान सकते हैं. यथा दृष्टान्तः—पाटनपुर नाम नगर निवासी एक "ईश्वर-कर्त्ता-भ्रमवादी" पूर्वोक्त पदार्थज्ञान परमाणु आदि पुद्गल के स्वभाव के जानने के लिये जैनशास्त्र सीखने की इच्छा कर के जैन आचार्यों के पास शिष्य हो कर विनयपूर्वक कई बरसों तक शास्त्र सीखता रहा; जब अपने मनमें निश्चय किया कि मैं पदार्थ ज्ञात हो गया (जान गया) हूं, तब निकल कर भ्रमवादीयों में मिल जैनिओं से चर्चा करने का आरम्भ किया. तब वह भ्रमवादी पदार्थ ज्ञान के विषय में

हार गया. क्यों कि पदार्थों के भेद बहुत हैं. तथापि वह भ्रमवादी फिर जैन आचार्यों का शिष्य (चेला) बना, और विनयपूर्वक नम्र हो कर विशेष पठन किया (पढा) और उन महात्माओं ने धर्मोपकार जान कर हितशिक्षा से पाठन कराया (पढाया). परन्तु वह काञ्जीका पात्र फिर भाग कर भ्रमवादियों में मिल चर्चा का बिस्तरा बिछा बैठा, और फिर जीव, अजीव के विचार में जैनीयों से हारा. इसी प्रकार से कहते हैं कि ग्यारह वीं वार पाण्डलबाग में परम पण्डित धर्मघोष अनगारजी के साथ दोनों ही पक्षों की ओर से चर्चा का आरम्भ हुआ.

भ्रमवादीः—तुमारे मत में पुद्गल का स्वभाव मिलने बिछड़ने का कहा है; तो कितने समय में (अरसे में) मिलबिछड सकते हैं? और अवस्था विशेष कितने काल तक रह सकते हैं?

जैनाचार्यः—जघन्य (कम से कम) एक सूक्ष्म समय में मिल—बिछड़ सकते हैं; उत्कृष्ठ (जियादा से जियादा) असंख्यात काल तक.

भ्रमवादीः—कोई दृष्टान्त (प्रमाण) भी है?

जैनाचार्यः—शीशे के सन्मुख (सामने) कोई पदार्थ किया जाय तो उस पदार्थ का प्रतिबिम्ब उस शीशे (दर्पण) में शीघ्र (जल्दी) पड़ जाता है. और हटाने से अर्थात् शीशे को परे करते ही हट जाता है. और सान पर लोहा धरने से शीघ्र अग्नि बन कर चिनगारे निकलते हैं. और जल में सूर्य की कान्ति पडने से शीघ्र ही साया जा पडता है, (इत्यादि) अब बुद्धि द्वारा सोच कर देखो कि वह पूर्वोक्त प्रतिबिम्ब (साया) और अग्नि किसी पदार्थ के तो बने ही होंगे, और कुछ

तो होवेगा ही, जो दृष्टिगोचर (नज़र में) होता है. अब देखो, उस प्रतिबिम्ब के वर्ण (रङ्ग) और आकार जिन परमाणुओं से बने, उन परमाणुओं के मिलने और बिछुड़ने में कितना समय लगा ?

भ्रमवादीः—सुनोजी; मैं एक दिन बाहर की भूमिका से चिन्ता मेटके पुनरपि आता था अर्थात् लौट कर आता था; रास्ते में धूप के प्रयोग से चित्त व्याकुल हुआ, तो एक आम के वृक्ष के नीचे खड़ा होता भया. तब अकस्मात् (अचानक) उस वृक्ष में से तख्ते गिर२ पड़े और वह आपस में मिल२ के एक उमदा तख्त बन गया और मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ; परन्तु उस तख्त पर मुहूर्त्त मात्र अर्थात् दो घड़ी भर विश्राम ले कर चलने लगा तब तत्काल ही वह तख्त फट कर तख्ते उसी आम के वृक्ष में जा मिले. अब कहो, भट्टाचार्य्यजी! यह कथन आप

की बुद्धि (समझ) में सत्य प्रतीत हुआ वा असत्य?

जैनाचार्य्य:—असत्य.

भ्रमवादी:—क्योंजी? तुम्हारे सूत्रों में तो पदार्थज्ञान का सारांश यही है कि पुद्गल का मिलने-बिछड़ने का स्वभाव ही है. तो फिर वृक्ष में से तख्ते मिलने और बिछड़ने का सम्बंध असत्य कैसे माना गया?

उस समय सभासद तो क्या बल्कि जैनाचार्य्यजी को भी सन्देह हुआ. तब जैनाचार्य्यजीने आहारिक लब्धी फोडी, अर्थात् अपने अन्तःकरण की शक्ति से मतिमानों की मति से अपनी मति मिला कर उसी वक्त पुद्गल के ८ भेद याद में लाये, और फर्माने लगे कि, अरे भोले! तूने पुद्गल का स्वभाव एक मिलने-बिछड़ने का ही सीख लिया, परन्तु यह नहीं जानता है कि पुद्गल का परिणामी स्व-

भाव होता है, देश-काल के प्रयोग से अनेक प्रकार के स्वभाव के भाव को परिणम जाता है. अब तुझे पुद्गल का सारांश संक्षेप से कहता हूं; सुन. (१) प्रथम तो दृष्टिगोचर जो पदार्थ हैं उन सब का उपादान कारण रूप एक भेद हैः—परमाणुं. फिर दो भेद माने हैंः-(१) सूक्ष्म, (२) स्थूल. फिर तीन भेदः— (१) विससा (२) मिससा, (३) पोगसा. फिर चार भेदः—द्रव्य (२) क्षेत्र, (३) काल, (४) भाव की अपेक्षा से. फिर पांच भेद हैंः— (१) वर्ण, (२) गंध, (३) रस, (४) स्पर्श, (५) संस्थान. और फिर छः भेद हैंः-[१] बादर बादर, [२] बादर, [३] बादरसूक्ष्म, (४) सूक्ष्मबादर, [५] सूक्ष्म, [६] सूक्ष्म सूक्ष्म. अब बादर बादर पूद्गल पर्याय रूप क्या२ पदार्थ होते हैं ? यथा जल, दूध, घृत, तेल, पारा आदिक. इनका स्वभाव ऐसा होता है कि इनको न्यारे२ कर देवें फिर मिलावें तो

एक रूप हो जावें, पृथग् भाव न रहे; अर्थात् जल वा दुग्धादिक को पांच सात पात्रों में डाल देवें तो न्यारा२ हो जाय. फिर एक में कर दें तो एक रूप ही हो जाय. (२) बादर पर्याय पदार्थ वह होता है कि न्यारा हो कर न मिले. यथा काष्ठ, पत्थर, वस्त्र, आदिक. अर्थात् काष्ट के गेले को चीर कर तख्ते किये जांय फिर उनको मिलावें तो न मिलें; चाहे कील लगा कर जोड़ दो, परन्तु वह वास्तव में तो न्यारे ही रहेंगे. ऐसे ही पत्थर, वस्त्रादिक भी जान लेने. अब समझने की बात है कि पुद्गल तो वह भी है, और वह भी है, परन्तु वह दुग्ध, जलादिक तो बिछड़ कर मिल जांय और काष्ट पत्थर आदि न मिलें, कारण यह है कि वह दुग्ध, जल, आ-दिक पुद्गल बादर२ पर्याय को प्राप्त हुए२ हैं, और काष्ट, पाषाण आदिक बादर पर्याय को प्राप्त हुए२ हैं. अब कहो रे भ्रमवादी! तेरा

कथन सत्य कैसे होवे? तूं तो शिर के भार ऊंधा चलता है, क्यों कि तैंने पुद्गल द्रव्य तो कहा दूसरी बादर पर्याय वाला अर्थात् काठ, और गुण अर्थात् स्वभाव कहा बादर२ पर्यायवाला, अर्थात् दूध, पानीका, जो बिछड़ कर मिल जावे; तांते तेरा कथन एकान्त मिथ्या है.

तब उस भ्रमवादी ने हाथ जोड़ कर क्षमा (माफी) मांगी, और कहा कि आपका कहना सत्य है. मैने पूर्वोक्त कथन मिथ्या ही कहा था. अब कृपा पूर्वक शेष (बाकी) चार भेदों की पर्याय का भी अर्थ सुना दीजिये. गुरू बोले, सुनो; तीसरी बादरसूक्ष्म, सो धूप, छाया, दीपक की ज्योति, प्रतिबिम्ब, आदिक, बादरसूक्ष्मपर्याय को प्राप्त होता है, क्यों कि इनमें बादर पन तो यह है कि प्रत्यक्ष दीखती हैं, और सूक्ष्मपन यह है कि पकड़ाई में नहीं आतीं, इसका नाम बादरसूक्ष्म है. (४) सूक्ष्म-

वादर, सुगंधि, और दुर्गंधि, पवन, आदिक; जो सूक्ष्मपन से दीखें तो नहीं और बादरपन से नासिका को, त्वचा को ग्राह्य होती हैं. (५) सूक्ष्म, कर्मवर्गणा, अर्थात् अन्तःकरण, जो न तो दृष्टि अर्थात् नजर में आवे और नाही पकमाई में आवे, सूक्ष्म होने से. (६) सूक्ष्म सूक्ष्म, अन्तःकरण की प्रकृतियां अर्थात् कर्मों का उपादान कारण रूप परमाणु, इति.

अब कहोजी,भ्रमवादी! तुम्हारे ईश्वर ने इस में क्या बनाया?

भ्रमवादी:—यह जम पदार्थ भी तो ई-श्वर ही ने बनाया है.

आचार्य:—हाय२ इतना सीख समझ कर भी तेरी मिथ्या बुद्धि तुझे भ्रम में गेर रही है. अरे मूर्ख! तेरा ईश्वर चेतन है वा जम?

भ्रमवादी:—अजी, चेतन है.

आचार्य:—यदि ईश्वर चेतन है तो ई-

श्वर ने जरू काहे के बनाए? क्यों कि जो वस्तु बनेगी उसका उपादानकारण अवश्य (जरूर) हीहोगा, कि जिससे वह बने.

भ्रमवादीः—हांशजी, मैं भूल गया; जरू पदार्थ तो अनादी हैं; परन्तु उनमें स्वभाव ईश्वर ने डाला है.

आचार्यः—अरे भोले! जब पदार्थ होगा तो पदार्थ का स्वभाव भी पदार्थ के साथ ही होगा. यथा पूर्वोक्त अग्नि होगी तो उसमें जलाने का स्वभाव भी साथ ही होगा, जहर होगा तो मारने का स्वभाव भी साथ ही होगा.

बस, इन बचनों को सुनते ही भ्रम-वादी भ्रम को छेरू आचार्यजी के चरणों में लगा और कहा, कि पदार्थज्ञान जैसा जैन शास्त्रों में है वैसा और किसी शास्त्र में नहीं है, फिर उसने जैन आम्नाय को निश्चय से धारण किया, और फिर भ्रमवादियो में न गया, स-

भाध्यक्षों को भी बहुत ज्ञानलाभ हुआ, और सभा विसर्जन हुइ.

जैनीः—कहो, वेदानुयायी! तुम कितने पदार्थ अनादि मानते हो?

आरियाः—(१) ईश्वर, (२) जीव, (३) प्रकृति अर्थात् जरु पदार्थ, प्रत्येक रूपी पदार्थ का ऊपादान कारण.

जैनीः—अब कहो ईश्वर ने क्या बनाया?

आरियाः—जैसे कुम्हार पात्र बनाता है, और तरखान, लुहार घमी बनाता है, इत्यादि,

जैनीः—भला, यह क्या उत्तर हुआ? मैने क्या पूछा और तूने क्या उत्तर दिया? भला, यही सही, कहो तो कुम्हार काहेका घमा बनाता है? क्या अपने हाथ पांवों का, वा किसी और वस्तु का?

आरियाः—मट्टी का.

जैनीः—मट्टी तो पहिले ही विद्यमान् (मोजूद) थी, फिर मट्टी ही से घमा बनाया. अपि तु घमे का कर्त्ता कुम्हार नहीं है क्यों कि घमे का उपादान कारण तो मट्टी ही ही है. हां निमित्त कारण कुम्हार है, सो निमित्तिक तो मिहनती होता है, परन्तु मिहनत भी सप्रयोजन होती है; यदि निष्प्रयोजन मिहनत करे तो मूर्ख कहावे, यथा "निष्प्रयोजनं किं कार्यम्" इति वचनात्. तो अब कहो कि तुम्हारा ईश्वर सप्रयोजन मिहनत करता है वा निष्प्रयोजन? अर्थात् ईश्वर पूर्वोक्त मिहनत से क्या लाभ उठाता है, और न करने से क्या हानि रहती है?

आर्य्यः—ईश्वर का स्वभाव है, अथवा अपनी प्रभुता दिखाने को.

जैनीः—निष्प्रयोजन कार्य करने का स्वभाव तो पूर्वोक्त मूर्ख का होता है. और प्रभुता दिखानी, सो क्या को ईश्वर का शरीक

है, जिसे दिखाता है, कि देख तेरे में प्रभुता घनी है कि मेरे में! अथवा ईश्वर को तुम नट, वा बाजीगर समझते हो, जो सब लोगों को अपनी कला दिखाता है! परन्तु नट भी तो कला सप्रयोजन अर्थात् दामों के वास्ते दिखाता है. अरे हठवादिओ! क्या तुम कुम्हार का दृष्टान्त ईश्वर में घटाते हो? कृत्रिम वस्तु का कर्त्ता तो हम भी मानते हैं, यथा संयोग सम्बन्ध के विषय में लिख आये हैं कि संयोग सम्बन्ध के मिलाने वाला कोई तीसरा ही होता है; घट, पट, स्तंभ, आदिक. घट का कर्त्ता कुलाल (कुम्हार), पट का कर्त्ता तन्तु वाय (जुलाहा), स्तंभ का कर्त्ता खाती (तरखान) इत्यादि. परन्तु अकृत्रिम वस्तु का कर्त्ता किसी प्रमाण से भी सिद्ध नहीं होता है; यथा आकाश, काल, जीव (आत्मा), कर्म (प्रकृति) परमाणु आदिक का. और एसे ही नैयायिक भी मानते हैं 'न्यायदर्शन' पुस्तक सम्बत्

१९४९ की छपी हुई ५७ पृष्ठ १५ पंक्ति में लिखा है, १ आत्मा, २ काल, ३ आकाश, आदि अनित्यत्व नहीं होते, अर्थात् शब्द में उत्पत्ति नित्य है, धर्मकत्व विरुद्ध धर्म होने से, यह अनुमान है, कि शब्द अनित्य है.

जैनीः—देखो ! ईश्वर कर्त्ता वादी वेदों को शब्द वत् नित्य कहते हैं; परन्तु यहां शब्द को अनित्य कहा है. दयानन्दजी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ११७ पृष्ठ में लिखते हैं, कि जब यह कार्य्य रूप सृष्टि उत्पन्न नहीं हुईथी, तब एक ईश्वर और दूसरे जगत् कारण, अर्थात् जगत् बनाने की सामग्री मौजूद थी. और, और आकाशादिक कुच्छ न था; यहां तक कि परमाणु भी न थे. देखो! यह क्या बाल बुद्धि की बात है! क्यों कि न्याय तो लिखता है कि आकाश आदि अनादि हैं. और फिर यह भी बताओ कि जगत् बनाने की सा-

मग्री क्या थी? और परमाणु का क्या स्वरूप है? और सामग्री काहे की बनती है? और परमाणुं किस काम आते हैं? और जगत् बनाने की सामग्री आकाश विना काहे में धरी रही होगी? और फिर जैनी आदिकों की कहने पर शायद शंकित हो कर, छठी वारके छपे हुए 'सत्यार्थ प्रकाश' के आठवें समुल्लास २२४ पृष्ठ ७, ८, ९ पंक्ति में लिखतें हैंः-जगत् की उत्पत्ति के पूर्व (१) परमेश्वर (२) प्रकृति, (३) काल, (४) आकाश तथा जीवों के अनादि होने से इस जगत् की उत्पत्ति होती है. यदि इनमें से एक भी न होवे तो जगत् भी न हो. तो अब कहो जैनियों का अनादि सृष्टि का कहना स्विकार होने में क्या भेद रहा? और वह भी पूछना चाहिये की जब सृष्टि रचने से पहिले ही काल था तो सृष्टि किस काल में रची, अर्थात् रात्रि काल में रची वा दिन में, और किस वक्त? यदि वक्त है तो

सूर्य्य और चन्द्र बिना वक्त कैसे हुआ ?

आरिया:—हम तो सृष्टि कर्त्ता ईश्वर ही को मानते हैं.

जैनी:—सृष्टि को ईश्वर कैसे करता है?

आरिया:—शब्द से जगदुत्पत्ति हुई है.

जैनी:—शब्द से जगत् की उत्पत्ति कैसे हुई ?

आरिया:—माण्डूक्योपनिषदादि में श्रुतिका मंत्र है: " एकोऽहं वहुस्याम् " अर्थात् सृष्टि से पूर्व (पहिले) व्योम शब्द; अर्थात् ईश्वर ने आकाश वाणी बोली, कि मैं एक हूं और बहुत प्रकार से होता हूं, ऐसे कहते ही सृष्टि बन गई.

जैनी:—भलाजी ! सृष्टि तो पीछे बनी और शब्द पहिले बना (हुआ) तो ईश्वर ने किस को सुनाने के लिये कहा, और किस ने सुना, और कौन साक्षी (गवाह) हुआ, कि यह व्योम शब्द हुआ है? क्यों कि पहिले तो

कुच्छ था ही नहीं. और मुसल्मान लोग भी ऐसे ही कहते हैं, कि खुदा के हुक्म से जहान बना, अर्थात् खुदा का हुक्म हुआ कि 'कुन' ऐसा कहते ही जहान बन गया! अब देखिये, कि जहान से पहिले तो सिवाय खुदा के और कोई था ही नहीं. जब कि कोई न था तो 'कुन' किस को कहा, अर्थात् दूसरा कोई न था तो हुक्म किस को दिया कि 'कर'. बस, इससे सिद्ध हुआ कि पहिले भी कोई था, जिस को शब्द सुनाया, अथवा हुक्म दिया; तो फिर उनके रहने की पृथिवी आदिक सब कुछ होगा. और दयानन्दजी भी सं० वी० १९५४ के छपे हुए 'सत्यार्थ प्रकाश' के आठवें समुल्लास २३६ पृष्ठ १६ पंक्ति में लिखते हैं, कि जब सृष्टि का समय आता है तब परमात्मा इन सूक्ष्म पदार्थों को इकट्ठा करता है, प्रकृतियों से तत्वेन्द्रिय आदिक मनुष्य का शरीर बना कर उस में जीव गेरता है, विना माता पिता युवा मनु-

ष्य सहस्रशः (हजारहा) बनाता है, फिर पीछे मैथुनी पुरुष होते हैं.

तर्कः—अब देखिये, प्रथम तो माता पिता बिना पुरुष का होना ही एकान्त असंभव है; यथा वृक्ष बिना फल का होना. भला! ईश्वर ने अपनी माया से बनाये कह ही दिये परन्तु यह तो समझना ही पड़ेगा, कि वह हजारो पुरुष पृथिवी बिना क्या आकाश में ही लटकते रहे होंगे? अपितु नहीं, सृष्टि पहिले ही होगी, और उसमें मनुष्य भी होंगे; यह प्रवाह रूप सिलसिलायों ही चला आता है. क्यों भ्रम में पड़ कर ईश्वर को सृष्टि के बनाने का परिश्रम उठाने वाला मान बैठे हो? और फिर २३७ पृष्ठ १७ पंक्ति में लिखते हैं:—

प्रश्नः—मनुष्य सृष्टि पहिले, वा पृथिवी आदिक?

उत्तरः—पृथिवी आदिक. क्यों कि पृथिवी बिना मनुष्य काहे पर रहें?

देखो परस्परविरोध ! हाय अफसोस! अपने कथन का भी बंधन नहीं, कि हम पहिले तो क्या लिख चुके हैं, और अब क्या लिखते हैं? परन्तु क्या करें? मिथ्या के चरित्र ऐसे ही होते हैं !

जैनी:—भला, ईश्वर तो चेतन है और सृष्टि जड है, तो चेतन ने जड कैसे बना दिये?

आरिया:—परमाणुओं को इकठा करके सृष्टि बनाता है.

जैनी:—क्या, ईश्वर के तुम हाथ पांव मानते हो, जिनसे वह परमाणु इकठे करता है?

आरिया:—ईश्वर के हाथ पांव कहांसे आये? ईश्वर तो निराकार है.

जैनी:—तो फिर परमाणु काहेसे इकठे करता है?

आरिया:—अपनी इच्छा से.

जैनी:—ओहो! तो फिर तुमने सम्बत् १९५४ के छपे हुए "सत्यार्थ प्रकाश" के चौद-

८वें समुल्लास ५८५ पृष्ठ १४ वीं पंक्ति में मुसल्मानों के कहने पर तर्क कैसे करा है, कि खुदा के हुक्म से जहान कैसे बन गया? भला; हम तुमसे पूछते हैं कि सृष्टि इच्छा से कैसे बन गई? अरे भोले! औरों पर तो तर्क करनी और अपने घर की खबर ही नहीं! क्यों कि हुक्म तो बचन की क्रिया है और इच्छा मन की क्रिया है. क्या, मरजी कोई बुहारी (झाड़ू) है कि जिससे परमाणु इकठे करके सृष्टि बनाई? हाय अफसोस! पूर्वोक्त शास्त्रों के अङ्ग ही बहकाये जाते; क्यों कि जब तुम इश्वर को निराकार मान चुके हो तो इच्छा कहांसे आई? हे भाई! तुमको इतना भी ज्ञान नहीं है, कि मरजी एक अन्तःकरण की प्रकृति होती है, अर्थात् मन, मरजी, इच्छा, संकल्प, दलील, भाव, प्रणाम यह सब अन्तःकरण के कर्म अर्थात् फेहल हैं. तांते, समझना चाहिये कि जिसके अन्तःकरण अर्थात् सूक्ष्म देह होगी, उसके स्थूल

देह भी होगी; और जिसकें स्थूल देह होगी उसके सूक्ष्मदेह अर्थात् अन्तःकरण भी होगा. तां ते तुमारा पूर्वोक्त कथन मिथ्या है, जो कहते हो कि ईश्वर की इच्छा से सृष्टि बनती है. ईश्वर के तो इच्छा ही नहीं है,तो बनता बनाता क्या? ईश्वर तो सर्वानन्द सदा ही एकरस कहता है.वस! वही सत्य है जो उपर लिख आये हैं,कि अकृत्रिम वस्तु का कर्त्ता नहीं हो सकता है; क्यों कि जब ईश्वर अनादि है तो ईश्वर के जाननेवाले भी और नाम लेने वाले भी अनादि होने चाहिये, क्यों कि जब ईश्वर है, तो ईश्वर के गुण कर्म, स्वभाव भी साथ ही हैं.तो ऐसा हो ही नहीं सक्ता कि इश्वर को कोइ जाने ही नहीं, और नाम लेवे ही नहीं, और ईश्वर कुछ करे ही नहीं.अगर ऐसा हो तो ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव नष्ट हो जावें; और ईश्वर की ईश्वरता भी न रहे.न तो ऐसा मानना पमेगा कि ईश्वर कभी है, और कभी नहीं;

क्यों कि यदि ईश्वर सदा अर्थात् हमेश ही कर्म करता कहता हो तो दुर्भिक्ष अर्थात् अकाल पड़ने के समय और महामारी (मार्की) पड़ते में लाखों मनुष्य वा पशु आदिक जीव मरते हैं, तो उनकी रक्षा क्यों नहीं करता?

आरियाः—उनके कर्म !

जैनीः—यह कहना तो कर्मकाण्डवादियों का है, कि कर्म ही निमित्तों से फल भुगताते हैं. उसमें ईश्वर का दखल ही नही है. बस, वही ठीक है जो कि जैनी लोग कहते हैं कि ईश्वर अनादि है; और ईश्वर को जानने वाले वा स्मरण (याद) करनेवाले भी अनादि ही से चले आते हैं, और उनके रहने का जगत् अर्थात् सृष्टि भी अनादि है, अर्थात् चतुर्गति रूप संसार, नर्क, तिर्य्यञ्च, मनुष्य, देवलोक, ज्योतिषी देव, अर्थात् सूर्य्य और चन्द्र भी अनादि से हैं. और देखिये "सत्यार्थ प्रकाश" समुल्लास बारहवे में दयानन्द-

जी जैनियों पर तर्क करते हैं, कि जैनी जम्बूद्वीप में दो चांद और दो सूर्य्य मानते हैं, और और लोग कई स्थूल दृष्टिवाले भी सुन२ कर विस्मित (हैरान) होते हैं. परन्तु यह खबर नहीं कि दयानन्द उक्त "सत्यार्थ प्रकाश" समुल्लास आठवें २४२ पृष्ठ के नीचे प्रश्न लिखते है, कि इतने बड़े २ भूगोलों को परमेश्वर कैसे धारण करता है?

उत्तरः—अनन्त परमेश्वर के सामने असंख्यात लोक, एक परमाणु के तुल्य नहीं कह सकते. अब देखिये, कि असंख्य लोक लिखता है, जब कि असंख्य लोक होंगे तो क्या वह अंधकार से ही पूरित्त होंगे? अपितु नहीं, असंख्य लोक होंगे तो एक २ लोक में यदी एक २ चांद, सूर्य्य भी होगा तो भी असंख्य चांद सूर्य्य अवश्य ही होंगे. और गुरू नानक साहिबजी अपने बनाये हुए जपजी साहिब की बाईसवीं पौड़ी में लिखते हैं

कि, पातालां पाताल लख, आकाशां आकाश ओरूक, ओरूक भाल थके वेद कहत इकबात.

परन्तु जैनियों के कहने पर उपहास (हंसी) करे बिन नहीं रहते हैं. किसीने सत्य कहा है, कि उल्लू को दिन से ही वैर होता है. यथा जैनी लोग शास्त्रानुकूल कहते हैं, कि जल, आदि कों में जीव होते हैं, तो उपहास करना, और अब डाक्टरों ने खुर्दबीन आदि के प्रयोग द्वारा आंखों से देख लिये हैं, कि जल के एक बिन्दु में असंख्य जीव हैं; परन्तु सनातन जैनियों में यह बात नहीं है, कि असत्य (झूठ) बोलने और गालियां देने पर कमर बांध लेवे.

आरियाः—अजी! तुम सृष्टि को कैसे मानते हो?

जैनीः—इस प्रकार से, कि जब जैन मतानुयायी और वैदिक मतानुयायी लोग भी इस बात को प्रमाण (मंजूर) कर चुके हैं,

कि परमाणु आदिक जड़ प्रकृति पदार्थ अनादि है, तो पदार्थ में मिलने वा बिछड़ने आदि का स्वभाव भी अनादि ही होगा, अर्थात् परमाणुओं का तर और खुश्क आदि स्पर्श होने से परस्पर सम्बंध होने का स्वभाव, यथा चिकने घड़े पर गर्द (धूलि) का जम जाना, इत्यादि. जब कि स्वभाव अनादि है तो उनके मिलाप से पिराड़ रूप पृथिवी भी अनादि हुई. जब पृथिवी अनादि हुई तो पृथिवी के आधार स्थावर, जंगम, जीवयोनि भी होगी; अर्थात् पृथिवी, जल, तेज, वायु और उनके साथ ही चंद्र सूर्य्य आदिक ज्योतिषियों का भी भ्रमण होगा; और ज्योतिषियों के भ्रमण स्वभाव से सर्दी गर्मी की परिणमता, अर्थात् ऋतुयों (मौसमों) का बदलना, और साथ ही वायु का बदलना, और ज्योतिषियों की भ्रमण (आकर्षण शक्ति) अर्थात् खैंच सें वायु और रज मिल कर आंधी और बादल का होना और

पूर्व अर्थात् परवा वायु की गर्मी में, पश्चिम अ-
र्थात् पछवा वायु की सर्दी का जामन लगने से
संमुर्छम जल का जमाव होना, और जमे हुए
जल में वायु की टक्कर लगने से अग्नि का उत्पन्न
(पैदा) होना अर्थात् बिजली का चमकना
फिर ढलाव हो कर हवा से मिल कर गर्जाट का
होना, और बारिश का होना, जल रूप घटा में
सूर्य्य की किरण मुकाबले पर, अर्थात् पूर्व को
घटा पश्चिम को सूर्य्य, वा पश्चिम को घटा
और पूर्व को सूर्य्य, इस प्रकार पड़ने से आ-
काश में पञ्च रङ्ग धनुष का पड़ना, इत्यादि यह
सिल सिला प्रवाह रूप अनादि भाव से हि
चला आता है. हां, पूर्वोक्त देशकाल के प्रयोग
से कभी कम और कभी जियादा आबादी हो
जाती है, जैसे हेमन्त ऋतु (सर्दी के मौसम)
में सर्दी (खुश्की) के प्रयोग से बनराई के पत्र
झड़ कर प्रलय अर्थात् उजाड़ हो जाती है,
और बसन्त (मधु) ऋतु में गर्मी तरी के प्र-

(जइ) यदि (तंसि) तेरी, (भोगे) भोगों के विषय में, (चइओ) त्याग बुद्धि की, (असत्तो) असमर्थता है अर्थात् संयम लेने की ताकत नहीं है, तो (अजाइं) आर्य्य (कम्माइं) कर्म (करे हीएयं) कर हे राजन्! वह आर्य्य कर्म क्या (धम्मे ठिओ) वीतराग भाषित धर्म के विषे स्थित हो कर, (सव्व पयाणुकंपी) सर्व पद अर्थात् सर्व जीवों के भेद त्रस्स और थावर इनका (अणुकंपी) दयावान् हो, (तो होहिसि) तू भी होगा, (देवो) देवगति का वासी, अर्थात् देवता, (वी ओव्वी) विक्रिय शरीरवाला; इति.

और भगवतीजी सूत्र शतक २ य, उद्देशा ५ठवां, तुङ्गापुर के श्रावक जैनाचार्य्य जी को पूछते हैं:—

गाथा.

संजमेणं भंते किं फले, तवेणं भंते किं फले, ततेणं तेथेरा भगवंता ते समणो वासय,

एवं वयासी संजमेणं अज्जोअणएहय फले त-
वेणं वोदाण फले.

अर्थः--(सं०) संयम का हे पूज्यजी! क्या फल? तप का हे पूज्यजी ! क्या फल? (ततेणं०) तब ते थेवर भगवंत (समणो वासय०) श्रावक प्रत्ये (एवं०) यों बोले, (संजमेणं०) संयम का (अज्जो) हे आर्य्य! (अणएह०) अनाश्रव अर्थात् आगामि समय को पुण्य पाप रूप कर्म का अन्तःकरण में से चयकान होना यह फल है, (तवेणं) तप का, (वोदाण फले) पूर्व किये हुए कर्म जो अन्तःकरण में सञ्चय थे, उनका क्षय होना, यह फल है.

एसे ही प्रत्येक स्थान (हर जगह) सूत्रों में जैनी लोग जैनियों को आर्य नाम से पुकारते आये हैं. इनके सिवाय आर्य मत कौनसा है ? हां,आर्य्यावर्त्त के रहने वाले हिन्दु लोगों को भी देशीय भाषा में आर्य्य कहते हैं. हां, अब एक और ही नवीन मत ३५

वा ४०वर्ष के लगभग समय से 'आरिया' नाम से प्रचलित हुआ है, जिस के कर्त्ता दयानन्द जी हुए हैं, जिनका प्रसंग कुछ आगे लिखा जायगा.

और जैनी आर्य्यों के ही यह नियम हैं:- (१) जीव हिंसा का न करना, (२) असत्य न बोलना और मिथ्या साक्षी (झूठी गवाही) न देना, (३) चोरी न करना और निक्षेप अर्थात् धरोड़ का न मारना और राजा की जगात न मारना, (४) परनारी वा परधन से दिल को मोड़ना, (५) विशेष तृष्णा का न बढ़ाना और खोटा व्यापार-शस्त्र तथा विष आदि का न वेचना, (६) लोभ में आ कर नीच कसाई आदिओं को व्याज पर रुपैया न देना, (७) द्यूत (जूआ) न खेलना, (८) मांस का न खाना, (९) मदिरा पान का न करना, (१०) रात्रि समय भोजन का न करना, (११) कन्दमूल का न खाना, (१२) अन छाना जल न पीना,

(१३) प्रातःकाल में परमात्मा आदि गुणियों के गुण स्मरण रूप जप का करना, (१४) शास्त्रीय विद्या अर्थात् धर्म शास्त्र का पढना, (१५) सुपात्र को दान देना, (१६) सबके साथ शिष्टाचार (मित्र भाव) रखना.

जैन आम्नायके साधुओंके नियमः—१ हिंसा, २ मिथ्या, ३ चोरी, ४ मैथुन, ५ परिग्रह इनपांचो आश्रवों का त्याग करना, और १ दया, २ सत्य, ३ दत्त, ४ ब्रह्मचर्य्य, ५ निर्ममता, यह पांच 'यम' अर्थात् इन पांच महाव्रतों के धारक, जिन की पहिचान (शनाखत) श्वेतवस्त्र, और मुखवस्त्रिकाका मुख पर बांधना, रजोहरण अर्थात् एक ऊनका गुच्छा जीव रक्षा के निमित्त संग रखना, १ कौडी पैसे का न रखना, २ सर्वदा यति पनमें रहना, ३ फल फूल आदि सुचित्त वस्तु का आहार अर्थात् भोजन न करना ४ भिक्षा मात्र जीविका, अर्थात् आर्य्य लोगों के घर द्वार जा कर मांग कर निर्दोषी भिक्षा

ले कर अपनी उदरपूर्त्ति करनी, ५ मनको वश करने के लिये ज्ञान वृद्धि अर्थात् धर्म शास्त्र का अभ्यास करते रहना, ६ परोपकार के लिये धर्मोपदेश को भी यथा बुद्धि करते रहेना, ७ इन्द्रियों को वश करने के अर्थात् विषयों की निवृत्ति के लिये यथा शक्ति तप, और व्रत आदिकों का करना, ८ अन्तकाल में अनुमान से, मृत्यु आसन्न (नजदीक) जान कर 'संग लेखन' अर्थात् इच्छा निरोध के लिये देह की प्रीति को त्यागता हुआ संगतुष्ठि हो कर खान पान आदिक सर्व आरंभ का त्याग करना. और इन जैनी साधुओं के शुभ आचार (चलनों) से, और सत्य उपदेश से पादशाहों और राजों को भी बहुत लाभ पहुंचता है, यथा राजा लोग अपने पास से द्रव्य दे कर चौंकी पहरा लगा२ कर चोरी, चुगली, खून आदिक दुष्ट कर्मों से बचा २ कर प्रजा की रक्षा कर २ के अपने राज्य को

निर्नय पालते हैं; और यह जो पूर्वोक्त साधु बिना दाम, बिना दवाव पूर्व, पश्चिम; दक्षिण; उत्तर, जहां२ उन्हों के तप संयम साधन वृत्ति का निर्वाह हो सकता है तहां२ देशान्तरों में नग्नपाद,(विना सवारी)पुरुषार्थ कर के विचरते हुए धर्मोपदेश करते रहते हैं. जो हजूरी हुक्म पूर्वोक्त धर्मावतार जैनाचार्य्यों ने फर्माया है, सो क्या, कि हे बुद्धिमान् पुरुषो ! १ त्रस, आदि जीवों की हिंसा मत करो, २ गरीबों को मत सताओ, ३ पशुओं पर अधिक जार मत लादो,४ मिथ्या साक्षी [गवाही] मत दीजो ५ झूठा दावा मत करो, ६ तस्करता मत करो, ७ राजाकी जगात [महसूल] मत मारो, ८ परनारी वा परधन को मत हरो, इत्यादि.और इन साधुओं के उपदेश द्वारा ही जैनी लोग जूं, लीख तक की भी हिंसा नहीं करते हैं, और पूर्वोक्त नियमों का पालन भी सत्संगी बहुलता से करते हैं, और इसमें यह

भी प्रत्यक्ष प्रमाण है, कि जिस प्रकार से अ-न्य मतावलम्बी जनों के अर्थात् कुसंगी पु-रुषों के मुक़द्दमें सर्कार में खून, चोरी, परनारी हरण आदि के आते हैं, ऐसे जैनी लोगों में से अर्थात् जो साधुओं के उपासक हैं, कदापि न आते होंगे, कोई तकदीरी अमर की बात कही नहीं जाती.

पृच्छक—अजी! हमने सुना है कि जैन शास्त्रों में मांसभक्षण भी कहा है

उत्तरः—कदापि नहीं. यदि कहा होता तो अन्य मतानुयायी लोगों की भान्ति जैनी पुरुष भी खूब खाते, यह अपना पूर्वोक्त मन तन क्यों मोसते?

प्रश्नः—१ भगवती जी सूत्र शतक पन्द्र-हवें में सींहां अनगार ने रेवती श्राविका के घरसें महावीरजी को मांस ला कर दिया है, और २ आचाराङ्गजी के दशवें अध्ययन में मत्स्य-मांस साधु को दिया लिखा है; और

३ ज्ञाताजी अध्ययन पांचवें में शेलक साधु को पन्थिक साधु ने मधु मांस ला कर दिया है; और ४ उत्तराध्ययनजी अध्ययन बाईसवें में नेमजी की वरात के लिये उग्रसेन राजाने पशुओं को रोका है.

उत्तर:—भगवतीजी में सींहां अनगार ने महावीरजी को पाक नामक औषध ला कर दिया है, जो पेचिश की बीमारी के काम आता है, और जो लोग मांस कहते हैं, वह जैन सूत्रों के अनभिज्ञ [अजान] जैन मत से भृष्ठ हैं क्यों कि जैनसूत्र भगवतीजी में स्थानांगजी चतुर्थ स्थान में, उवाईजी में मांसाहारी की नर्क गति कही है.

गाथा.

एवं खलु च ओहिं ठाणे हिं जीवा, णे रइयत्ता ए, कम्मं, पकरेताणे रइए सुओव व-धंति तंजहा महारंभयाए, महा परिग्गहाए पंचिंदिय वहेणं कुण मांहारेणं.

महारंभयाए:—महा खोटा वणिज, हाड़ चांम आदि पन्द्रह कर्मादान (महा परिग्गहाए) महातृष्णा अर्थात् कसाई आदिकों को विआजू द्रव्य देना, (पचिंदिय वहेणं) पञ्चेन्द्रिय जीव का वध करना, (कुणमाहारेणं) मांसाहारी मधु मांस के खानेवाला, इन पूर्वोक्त चार कर्मों के करनेवाला नर्क में जाता है, और दशमांग प्रश्न व्याकरण षष्ठ अध्ययन प्रथम संवर द्वारे जैन साधु के अधिकार में सूत्र लिखा है, "अमज्ज मंसासणेहिं" अर्थात् साधु मद्य, मांस, रहित आहार करे, ऐसे कहा है. तां ते जो आचारांगजी के दशवें अध्ययन में कहा है, "वहु अठिएणं मंस मच्छेण व, उवणि मंतेज्जा" सो सब यह फलों के नाम हैं. वहां मांस नाम से फलका दल, और अस्थि नाम से फल की गुठली; क्यों कि सूत्र जीवाभिगमजी में वा सूत्र प्रज्ञापनजी में प्रथम पद वनस्पति के अधिकार में

बहुत प्रकार के फलों के नाम हैं, यथा " ए-गठिया बहु बीयाए " अर्थात् एक अस्थि (एक हड्डी) वाले फल, अर्थात् एक गुठली वाले फल, ऐसे ही बहु बीयाये, बहोत बीज वाले फल, जिस में बहुत गुठली होवें, वहां आंवला भी कहा है, (१) पुत्र, जीव, बांधव, जीवग, ऐरावन, बिल्ली, बराली. मांसवल्ली, मजार, असव कर्णी, सिंहकर्णी आदिक, और वेदांगी के पुस्तक अभिनव निघण्टु आदिक में बहुत प्रकार के जानवरों के नाम से वन-स्पति फल ओषधियों के नाम दर्ज हैं, क्यों कि प्राकृत विद्या अर्ध मागधी भाषा में है, (१) संस्कृता (२) प्राकृता (३) अपभ्रंशा, (४) पैशाचिका (५) शूरसेनी (६) मागधी, यह ६ भाषाओं के नाम हैं, सो इस में अनेक देशों की गर्भित भाषा है, और देशीय भाषा कई देखने में भी आती हैं, कि कई फलों के वा शाक आदि के नाम पंखी आदिकों के

नाम से बुलाये जाते हैं, जैसे चकोतरा फल,
और चकोतरा नाम का एक पंखी भी होता
है. और एक गलर नाम का फल और गलर
नामसे पंखी भी होता है, जिसको गुरसल
भी कहते हैं, और पंजाब देश में शारक भी
बोलते हैं. और मैना का साग भी होता है
और मेना नाम का एक पंखी भी होता है.
और सोया का साग भी होता है, और सोया
नाम का पंखी भी होता है, जिस को तोत्ता
भी कहते हैं. और मारवाड़ देश में चील का
साग होता है, और चील नाम का पंखी भी
होता है, जिसको पंजाब मे ईलभी कहते हैं.
और म्यानदाब में मक्की के सिट्टे को कुकड़ी
भी कहते हैं, और पंजाब देश में कुकड़ी मु-
रगी को कहते हैं. और गाओजवान वन-
स्पति औषधी, और गाओजवान, अर्थात् गौ
की जिव्हा. ऐसे २ भाषाओं के बहुत नाम से
भेद हैं, जैसे कई गांवों के लोग गाजर में जो

काष्ठ सा होता है उसे गाजर की हड्डी कहते हैं; इति. और ज्ञाताजी में जो शेलकजी ने मद्य मांस सहित आहार लिया कहा हो सो वह शेलकजी रोग कर के संयुक्त थे, तां ते मधु नाम यहां मदिरा का नहीं समझना, मधु नाम फलों का मधु अर्थात् अर्क और मांस नाम सें पूर्वोक्त फलोंका दल अर्थात् कोलापाक बजौरह पाक, मसलन मुरब्बा. और नेमजी की वरात के लिये पशु घेरे कहते हो, सो वह यादव वंशीय राजा क्षत्रिय वर्णमें थे उनमें कई एक जैन मतावलम्बी भी थे, और कई भिन्न २ मतानुयायी थे, कई प्रवृत्ति मार्ग में चलने वाले और कई निवृत्ति मार्ग में थे, उनका कहना ही क्या? परन्तु श्री जैन सूत्रों में श्री जैनेन्द्र देव की आज्ञा मांस भक्षण में कदापि नहीं हो सकती है, क्यों कि जिन वाणी अर्थात् जिन आज्ञा का नाम प्रश्नव्याकरण सूत्र के प्रथम संवर द्वार में

अहिंसा भगवती श्री जीवदया ऐसा लिखा है. हां! कहीं किसी टीकाकारने गपौभा लगा दिया हो तो हमें खबर नहीं. हम लोग तो सूत्र से और सम्बन्ध से मिलता हुआ टीका टब्बा मानते हैं. जो मूल सुत्र के अभिप्राय को धक्का देनेवाला गमोगम अर्थ हो, उसे नहीं मानते हैं. यथा पद्मपुराण में शलाका ग्रंथानुसार प्रसंग आता है कि वसुराजा के समय में वेद पाठियों की शास्त्रार्थ में चर्चा हुई है. एक तो कहता था कि वेद में यज्ञाधिकार के विषय में अज होम करना लिखा है, सो अज नाम बकरे का है, सो बकरे का हवन होना चाहिये. दूसरा बोला, कि अज नाम पुराणे जौं का है, सो जौं का हवन होना चाहिये, अब कहो श्रोता जनों! कौनसा कथन प्रमाण किया जावें? वेद पर निश्चय करें तब तो उस शब्द के दोनों ही अर्थ सत्य हैं. बस, अब क्या तो सम्बंध अर्थ पर और क्या

अपनी माति पर निश्चय होगा; क्यों कि वहां दया, क्षमा, आदि क्रिया अर्थात् आर्य्य धर्म का सम्बंध चल रहा होगा तो बकरे का क्या काम? क्यों कि "अहिंसापरमोधर्म्मः" इस प्रकार के मंत्रों को धक्का लगेगा. वहां तो अज मेध शब्द का अर्थ पुराणे जौं का ही होना चाहिये. यदि वहां हिंसा आदि क्रिया अर्थात् अनार्य्य (बूचम्खाने) का सम्बन्ध चल रहा होगा तो अज शब्द का अर्थ बकरे का ही सम्भव होगा, अथवा पाठक की मति हिंसा में तथा विषयानन्द में प्रबल होगी तो अज शब्द का अर्थ बकरा है, ऐसे ही प्रमाण करेगा, और यदि पाठक की मति दया में तथा आत्मानंद में प्रबल होगी तो अज नाम जौं का ही प्रमाण करेगा, क्यों कि 'मतेतिमत्त' हे बुद्धिमानों! सुसंग के और सत्य शास्त्र के आधार से मतिको निर्मल करना चाहिये. ऐसे ही गोमेध सो गो नाम

गौ का भी है और गौ नाम इन्द्रियों का भी है. अब किसका होम होना चाहिये ? परन्तु पूर्वोक्त दयावान् को तो गो शब्द का अर्थ इन्द्रियों का ही प्रमाण होगा; यथा 'इन्द्रियाणि पशुं कृत्वा वेदींकृत्वा तपोमयीम्' इति वचनात्. इस प्रकार से शास्त्रों में बहुत से शब्द ऐसे होते हैं कि जिन के अनेक २ अर्थ प्रतीत होते हैं. परन्तु सम्बंध से और धर्म से मिलता अर्थ प्रमाणिक होता है. हां ! जिस शब्द का एक ही अर्थ हो, दूसरा हो ही नहीं, तो वहां वैसा ही विचार लेना चाहिये.

॥ बारवां प्रश्न ॥

पृच्छकः—अजी ! हमारी बुद्धि तो चकित (हैरान) है, कि मत तो बहुत हैं, परन्तु एक दूसरे में भेद पाया जाता है. तो फिर किसको सत्य समझा जावे ?

उत्तरः—जिसमें मुख्य धर्म पांच नियम हों:— (१) दया, (२) सत्य, (३) दत्य, (४)

ब्रह्मचर्य्य, (५) निर्ममता.

प्रश्नः—यह तो सब ही मतों में मानते हैं, फिर भेद क्यों?

उत्तरः—अरे भाई! भेदों का सार यह है कि अच्छी बात के तो सब अच्छी ही कहेंगे, बुरी कोई भी नहीं कह शकता.

दोहा.

नीकी को नीकी कहे, फीकी कहे न को;
नीकी को फीकी कहे, सोइ मूर्ख हो.

परन्तु अच्छी करनी कठिन है. जैसे कि म्लेच्छ लोग भी कहते हैं कि हमारे कुरान शरीफ में अव्वल ही ऐसा लिखा हैः—
"बिसम अल्ला उल रहमान उल रहीम."
अर्थः—शूरू अल्ला के नाम से जो निहायत रहमदील मेहरबान है, हमाइल शरीफ मतरजाम देहली में छपी सन् १३१८ हिजरी में. परन्तु जब पशुओं की तफ़्क़तों की गर्दन अलग कर देते हैं तब रहमान और रहीम

कहां जाता है? खैर; यह तो वेचारे अनार्य्य हैं; परन्तु जो आर्य्य लोग हैं उनमें से भी सब के सब अपने नियमों पर नहीं चलते. बस, जो कहते हैं और करते नहीं उनका मत असत्य है. यथा 'राजनीति' में कहा है की:—

परोपदेशे कुशला दृश्यन्ते बहवो नराः ।
स्वभावमनुवर्त्तन्ते सहस्त्रेष्वपि दुर्लभः ॥

अर्थः—बहुत से पुरुष दूसरों को उपदेश करने में तो चतुर होते हैं और स्वयं कुछ नहीं कर सकते, और जो अपने कथन के अनुसार व्यवहार करने वाला हो वह तो हजारो में भी दुर्लभ है.

और जो कहते भी हैं और करते भी हैं उनका मत सत्य है. यथा 'राजनीति' में कहा है कि:—

पठकः पाठकश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिंतकाः ।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खाः यः क्रियावान् स पण्डितः ॥

अर्थः—पढनेवाला और पढाने वाला और

जो कोई और भी शास्त्र का अभ्यास करने वाले हैं वे सब केवल व्यसनी और मूर्ख हैं; परन्तु जो सत्क्रिया वाला पुरुष हो वही पण्डित कहलाता है.

प्रश्नः—जो कहते भी हैं और करते भी हैं वह मत कौनसा है?

उत्तरः—इस विषय में मुझको कुछ मुनसिफी तो मिल ही नहीं गई है, जो मेरे ही कहे मत को सब लोग स्विकार कर लेंगे. यह तो अपनी बुद्धि की आंखो से देख लीजिये और उद्यम कर के अन्वेषण कर (ढूंढ) लो, कि किस२ मतों के साधुओं के और उनके सेवकों के क्या२ नियम हैं; और वह उन नियमो पर चलते हैं वा नहीं और उनकी प्रतीत और चलन कैसे हैं. "हाथकङ्गन को आरसी क्या?" अब देखिये, कि सिवाय जैनियों और कुछ एक दक्षिणी वैष्णवों के, और सब प्रायः मधु मांस की चाट करते हैं. अर्थात्

जैनी कहाते हुए लाखों में से शायद एक दो मांसभक्षी हो परन्तु जैन से बाहिर और मत अनुयायी लाखों में से शायद दस नहीं खाते होंगे. क्यों कि हम देखते हैं कि आज कल के समय में कागज और स्याही के यंत्रालय (छपेखाने) के प्रभाव से बहुत खर्च हो रहा है. अर्थात् हरएक मत के धर्मशास्त्र छप२ कर प्रकट हो रहे हैं. तिस पर भी कसाईयों और कलालों की दुकानो की तरक्की ही देखी जाती है. हाय! अफसोस! बस, इसका यही कारण है कि कहते हैं परन्तु करते नहीं. अर्थात् 'अहिंसा परमो धर्मः' इत्यादिक वाक्य केवल मुख से पुकारते ही रहते हैं, परन्तु अहिंसा अर्थात् दया पालने की युक्तियें नहीं जानते. जाने कहां से? विना जीव अजीव के भेद जानने वाले दया धर्मी कनककामिनी के त्यागी साधु–सती के कौन बतावे? यह तो वह कहावत है:—

" रजाव बेड़ा सारका, ऊपर जरयो सार; गृहस्थी के गृहस्थी गुरु कैसे उतरें पार ?"

प्रश्नः—लालाजी, तुमारी बुद्धि के अनुसार यह आर्य्यसमाज नाम से जो नया मत निकला है सो कैसा है ? क्यों कि इनके भी तुम्हारी भान्ति दया धर्म मानते हैं, और मधुमांस का सेवन करना भी निषेध करते हैं. और थोड़े ही काल में कई लाखों पुरुष 'आरिया' कहाने लग पड़े हैं.

उत्तरः—कैसा क्या ? यह दयानन्दजी ने ब्राह्मणों से विमुख हो कर 'सत्यार्थ प्रकाश' नाम से पुस्तक, जिसमें पुराणादि ग्रंथो के दोष प्रकट किये, और अन्य मतों की निन्दा आदि इकठी करर के बनाया, जिसको प्रत्येक स्थान स्कूलों में पढाने की अक्कमन्दी की, क्यों कि कच्चे वरतन में जैसी वस्तु भरो उसकी गन्धि (बू) हो जाती है अर्थात् बचपन से जैसे पढाया जाता है, वैसे ही संस्कार

(खयाल) चित्त में दृढ हो जाता है. यही विशेष कर मत फैलने का कारण है. परन्तु यह दोष तुमारे लोगों का ही है. क्यों कि अपने बच्चों को न तो प्रथम अपनी मातृभाषा अर्थात् संस्कृत विद्या वा हिन्दी पढाते हो, और नाही कुछ धर्म शास्त्र का अभ्यास करवाते हो. प्रथम ही स्कूलो में अंग्रेजी फारसी आदि पढने बैठा देते हो. देखो स्कूलों के पढे हुए ही प्रायः कर, आर्य्य समाजी देखे जाते हैं. सो इन बेचारों के न तो देव, और न गुरु, न धर्म, और ना ही कोई शास्त्र का कुच्छ नियम है. क्यों कि इनके ईश्वर को भी विपरीत (बेढंग) ही मानते हैं, अर्थात् ईश्वर को कर्त्ता मानने से पूर्वोक्त लिखे प्रमाण से चार दोष प्राप्त कराते हैं. और न इनके कोई गुरु अर्थात् साधुवृत्ति का कोई नियम है. जो चाहे सो उपदेशक बन बैठता है. और गली२ में पुस्तक हाथ लिये मनमाने गपौडे हांकता है

कि स्त्रियों का पुनर्विवाह हो जाना चाहिये, अर्थात् विधवा स्त्री को फिर विवाह दो, क्यों कि पुराणों में तो, हमने भी लिख देखा है कि पिछले समय में ब्राह्मणों के कथन से विधवा स्त्री का देवरादिकों के साथ करेवा हो जाता था, परन्तु पुनर्विवाह नहीं होता था, और अब वर्त्तमान काल में भी कईएक जातियों में ऐसे ही देखने में आता है; इत्यादि. और न कुछ हिंसा मिथ्यादि त्याग रूप और जप तप वैराग्य आदि धर्म है. क्यों कि यह जो कहते हैं कि हमारे वेदों में लिखा है, " अहिंसापरमोधर्मः माहिंस्याः सर्व भूतानि " अर्थात् कीटिका से कुञ्जर (हस्ती) पर्य्यन्त किसी जीव को मत सताओ. परन्तु पूर्वोक्त लेख साधु संगति के अभाव से दया की युक्तियें नहीं जानते हैं. क्यों कि हम बहुलतासे ग्राम और नगरों में देखते हैं. क्या ब्राह्मण, क्या क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, क्या समाजी, क्या अन्य मता,

वलम्बी खाट को झाम्ड कर खटमलों (माकु-
नुओं) को पैरों से मल देते हैं. उधर तीर्थ-
स्नान करें, उधर बैठ कर जू लीख मारें, उधर
गौ भैंस आदि पशुओं की चिचमी तोम्ड कर
गोबर में दबा दें, वा अंगारों में जलायें, उधर
भिम अर्थात् धमोमी वा तैतकं (डेमुओंके)
वत्ते में आग लगायें, उधर पुराणीवाम में वा-
कूमे में आग लगायें, उधर सर्प, विच्छू को
मारने दौमे, बैल को बधिया करावें, गौवाल
विछोडें, अर्थात् बछमों को कसाई के पास
वेचें, इतना ही नहीं बल्कि यज्ञादिकों में प-
शुओं का वध-(करना)-भी मानते हैं. इनोंके
यजुर्वेद-मनुस्मृति आदिक ग्रंथो में लिखा हुआ
भी है. और समाजियों में से मांस भी खाते
हैं. इनके अब मत भी दो हो गये हैं. एक
मांस पार्टी मांस खाना योग्य कहते हैं. और
एक घासपार्टी मांस खाना अयोग्य कहते हैं.

परन्तु, अहिंसा भगवती श्री जीवदया,

तथा 'अहिंसापरमोधर्मः' अहिंसालक्षणम् धर्मः" इस अमृतवाक्य ने जैन मत की मदद से ही जय की पताका ऊंची उठाई है.

प्रश्नः—अजी ! तुम जैनी लोग पशु आदि छोटे२ जीव जन्तुओं की दया तो बहुत कहते हो, वा करते हो, परन्तु मनुष्य की दया कम कहते वा करते हो.

जैनीः—वाह जी वाह ! खूब कही; अरे भोले ! मनुष्य मात्र तो हमारे भाई हैं. उनकी दया क्या, उनसे तो भाईयों वाली भाजी है, जो कहेंगे जी, कहायेंगे जी, और जो कहेंगे मर कहायेंगे मर. यदि किसीको नवल (गरीब) जान कर सतावेंगे वह जुल्म अर्थात् अन्याय में शामिल है, सो वर्जित है. इनसे तो मित्रता रखनी, मीठा बोलना, यथाः—

गुणवन्त नर को वन्दना, अवगुण देख मदद्दस्त;
देख करुणा करे मैत्री भाव समस्त.

अवशक में लिखा है,

गाथा.

खामेमी सब्वे जीवा सब्वे जीवा खमंतु मे
मित्ति मे सब्वे भूएसु वैर मज्झं न केणयी॥

परन्तु दया तो पूर्वोक्त अनाथ जीवों की ही होती है, जो सर्व प्रकार से लाचार हैं; जिनका कोई सहायक नहीं, और घर भी नहीं, इन्द्रियहीन, बलहीन, वृद्ध अवस्था विकलेन्द्रिय, इत्यादि. क्यों कि पशु आदि बड़े जीवों की हिंसा से, तो जैनी आर्य्य आदिक कुलों में पूर्व पुण्योदय से प्रथम ही रुकावट है, उनको तो पूर्वोक्त छोटे२ जन्तुओं की रक्षा का ही उपदेश कर्त्तव्य है, जिससे थोड़े पाप के अधिकारी भी न बनें तो अच्छा है, परन्तु यह समाजी लोग (दयानन्दी) किसी शास्त्र पर भी विश्वास नहीं करते हैं; प्रत्येक मत की, वा प्रत्येक शास्त्र की निन्दा, हुजात आदि करने में सर्वदा तत्पर रहते हैं, यथा सम्वत् १९५४ के छपे हुए सत्यार्थ प्रकाश, के बारहवें

समुल्लास और ४५० पृष्ठ पर जैनी साधुओं के लक्षण लिखे हैंः—

सरजोहरण भैक्ष्य, भुजोल्लुञ्चितमूर्द्धजाः श्वेताम्बराः क्षमाशीलाः, निस्संगा जैन साधवः ॥

और ४५१ पृष्ठ की ग्यारहवीं पंक्ति में लिखा है, कि यति आदिक भी जब पुस्तक बांचते है तब मुख पर पट्टी बांध लेते हैं, और फिर उसीकी पन्द्रहवीं पंक्ति में लिखा है कि यह उल्लिखत बात विद्या और प्रमाण से अयुक्त है, क्यों कि जीव तो अजर अमर है, फिर वह मुख की बाफ से कभी नहीं मर सकते, इति.

जैनीः—वाह जी वाह ! बस इसी कर्त्तव्य पर आर्य्य अर्थात् दयाधर्मी बन बैठे हो? भला यदि बाफ से नहीं मर सकते, तो क्या तलवार से मर सकते हैं ? अपितु नहीं. तो फिर खड्गादि द्वारा मारने में भी दोष नहीं होना चाहिये. परन्तु "अहिंसा परमो धर्मः" और

कसाईयों को पापी कहना यह क्या ? क्यों कि जीव तो अंजर अमर है, तो कसाईयों को पाप क्यों ? और दयावानों को धर्म क्यों ? और दयानन्दजी को रसोईये ने विष दे कर मार दिया तो उसे भी पाप नहीं लगा होगा ? क्यों कि दयानन्दजी का जीव भी तो अजर अमर ही होगा. ऐसे ही लेख राम को मुसलमान ने छुरी से मार दिया तो उसको भी दोष न हुआ होगा ? अपितु हुआ, क्यों नहीं ? यह केवल तुमारी बुद्धि की ही विकलता है.

शिष्यः—मुझे भी सन्देह हुआ कि अगर जीव अमर है तो फिर जीव घात (हिंसा) को पाप क्यों कहते हो ?

गुरूः—इस परमार्थ को कोई ज्ञानी दयाशील ही समझते हैं, नतु ऐसे पूर्वोक्त बुद्धिवाले, दयाश कहके फिर हिंसा ही में तत्पर रहते हैं. जैसे गीता में लिखा है, कि अर्जुनजी ने कौरव दल में सजनों की दया दिल

में ला कर अपनें शस्त्र छोड़ दिये, तब श्री कृष्णजी ने कहा, कि वीर पुरुषों का रणभुमि में आ कर शास्त्र का त्याग करना धर्म नहीं हैं. अर्जुनजी बोले कि, भगवन्! में कायर नहीं हूं. मुझे तो, अपने इन स्वजनों की तर्फ देख कर दया आती है, और इनका वध करना, मेरे लिये महान् दोषकार है. तब श्री कृष्णजी कहते भये कि हे अर्जुन! इनके मारने में तुझे कोई दोष नहीं हैं. क्यों कि यह आत्मा तो अमर है यथा:-

श्लोक.

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥२३॥

इसी वर्णन में गीता समाप्त कर दी. जिसका सारांश यह निकला कि अर्जुन का चित्त जीवहिंसा की घृणा से रहित हुआ, और खूब तीक्ष्ण तेग चलाई और कौरव कुल को क्षय कर दिया. तुम अच्छी तरह से गी-

ताजी को आद्योपान्त बांच कर देख लो, परमार्थ नास्तिकों वाला ही निकलेगा, कि आत्मा आकाशवत् है. परन्तु पूर्वोक्त यथार्थ ज्ञान तो यह है कि यदि जीव अमर है तो भी प्राणों ही के आधार से रहता है, यथा जैन शास्त्रों में जीवहिंसा का नाम 'प्राणातिपात' कहा है: प्राणानां अतिपातः अर्थात् प्राणों का छूट लेना, इसीका नाम जीवहिंसा कहा हैं. अर्थात् प्राणों से न्यारा होने का नाम ही मरना है, यथा दृष्टान्तः—

पुरुष घर के आधार रहता है. जब घर की भीत टूट जाय तो घर वाले की बाहू तो नहीं टूट गई, परन्तु घरवाले को कष्ट तो मानना ही पड़ेगा, कि मेरे घर की भीत गिर गई, मेरे काम में हर्ज है, इसको चिनो, तथा घर गिर पड़ा, वा किसीने ढा दिया, वा फूंक दिया, तो घरके ढैने से वा फूंक दो जाने से क्या घर वाला मर जाता है ? अपितु नहीं,

घर से निकल जागता है; परन्तु घरके ढै नेका वा दग्ध होने का दुःख तो बहुत ही मानता है. इसी प्रकार से जीव के अमर होने पर भी इसकी देह से अलग करने में बमा पाप होता है. चाहे बाफ से हो चाहे तलवार से हो. तांते जीवरक्षा करना सदैव सब को योग्य है. और पञ्चम बार सं. १९५४ के छपे हुए 'सत्यार्थ प्रकाश' के ४५२ पृष्ठ की १४ वीं पंक्ति में लिखा है कि पट्टी बांधने से दुर्गन्धि भी अधिक बढती है, क्यों कि शरीर के भीतर दुर्गन्धि भरी है, शरीर से वायु दुर्गन्धियुक्त प्रत्यक्ष है, रोका जावे तो दुर्गन्धि भी अधिक बढ जावे, जैसा कि बन्ध जाजरूर अधिक दुर्गन्धयुक्त और खुला हुआ न्युन दुर्गन्धियुक्त होता है. अब देखिये, जैनियों की निन्दा के लिये अपने मुख भी मूढों ने जाजरूर (विष्ठा के स्थान) बनाये! यथा पट्टी बांधनेवालों के मुख बंध जाजरूर, और खुले मुखवालों के

खुले भाजरूर! अपितु सत्य ही है, कि निन्दक जनों के हृदय और मुख भाजरूर सदृश ही होते हैं, नतु यों लिखना चाहिये था कि सार पदार्थयुक्त भाजन का मुख बांधा जाता है, खाली का खुला रहता है. अर्थात् केसर कस्तूरी के डिब्बे वा घृत खांड आदि के भाजन के मुख बन्द किये जाते हैं. और असार आदिक के भाजन खुले ही पडे रहते हैं. इन समाजियों में एक और भी विशेषता है कि प्रत्येक गुणी (विद्वान्) से विवाद करना, विनय नहीं, भक्ति नहीं, अर्थात् जो बात आपको तो न आती हो और उसी पर झट प्रश्न कर देना, वह यदि पूछे कि तुम भी जानते हो, तो कहना कि हम तो पूछने को आये हैं, फिर वह ज्ञान की और गुण की बात कहें तो उस गुण रूपी दूध को अपने कांजी के वर्तन में डाल कर खट्टा कर के फाड़ देना, अर्थात् और ही तरह समझ लेना,

अर्थात् अपनी कुतर्कें मिला कर विषमपने ग्रहण कर लेना, और जो कोई अवगुण रूप प्रतीत पड़े तो उस छिद्र को पकड़ कर कुछ अपने घर से युक्तियें हुजत पन की मिला कर उन्हीं के शत्रु रूप हो कर निन्दा छपवा देनी. क्यों कि इन लोगों की बनाई हुई पुस्तकें भी हर एक मत की निन्दा आदि से भरी हुई हैं! न कुच्छ त्याग, वैराग्यादि आत्मा के उद्धार करने की विधि से, जैसे 'सत्यार्थप्रकाश' महाभारत लेखराम कृत् आदिक. और न यह वेदों को ही मानते हैं, क्यों कि (१) वेदों के मानने वाले ही वैष्णव हैं, (२) वेदों ही के मानने वाले ब्राह्मण हैं, (३) शैव, (४) परमहंसादिक वेदान्ती, (५) मनुजी, (६) शंकराचार्य्य, (७) वाम मार्गी, (८) दयानन्द सरस्वती आदिक. अब बात समझने की है, (१) वैष्णव तो वेदानुकूल श्राद्ध आदि गंगा पहोये आदिक का स्नान श्री राधा कृष्णजी की मूर्त्ति

का ध्यान करते हैं. (२) ब्राह्मण वेदानुकूल क्रियापूर्वक श्री सीतारामजी की मूर्त्तिका पूजन करते हैं. (३) शैव वेदानुकूल श्रीशंकरजी का लिङ्ग अर्थात् पिण्डी का पूजन करते हैं. और यह पूर्वोक्त मतानुयायी देव और देवलोक स्वर्ग वा नर्क आदि स्थान का होना वेद प्रमाण से सिद्ध करते हैं और मुक्ति से फिर लौट कर नहीं आना कहते हैं. (४) परमहंस वेदानुकूल मूर्त्तिपूजन आदि का खण्डन करते हैं और एक ब्रह्म सर्वव्यापी आकाशवत जडरूप मानते हैं और परमेश्वर, जीव, लोक, परलोक, बंध, मोक्ष आदिक की नास्ति कहते हैं. (५) मनुजी वेदानुकूल श्राद्धादि में मांस, मदिरा आदि का पितृदान करना 'मनुस्मृति' में लिखते हैं, जिस स्मृति के दयानन्दजी ने भी 'सत्यार्थ प्रकाश' नामके अपने रचे हुए पुस्तक में बहुत से प्रमाण दिये हैं. फिर लोगों की ओर से पराभव और घृणादृष्टि

के होने के कारण दयानन्दियों ने अयुक्त जान कर कितने एक उस पुस्तक में से निकाल भी दिये हैं. (६) श्री शंकराचार्य्य, वेदानुकूल वैदिक हिंसा को निर्दोष कहते हैं अर्थात् अश्वमेधादिक यज्ञ में पशुओं का वध करना योग्य कहते हैं. जैसे, पूर्वकाल में जैनी और बौद्धों ने हिंसा की निन्दा करी, तो उनके साथ बहुत क्लेश किया, उनके शास्त्र भी डबो दिये और जला दिये. (७) वामी, वेदानुकूल वाममार्ग का पालन करते हैं. (८) अज्ञानक वेदों को धूर्तों के बनाये हुए कहते हैं. (९) मैक्समूलर पण्डित डाक्टर वेदों को अज्ञानी पुरुषों के बचन कहते हैं. (१०) जैनसूत्र श्री 'उत्तराध्ययन जी' २५ वें अध्ययन में जयघोष ब्राह्मण अपने भाई विजयघोष से कहते थे:—

"सब्बे वेया पशुबद्धाः" अर्थात् वेदों में तो पशुबध करना लिखा है. और 'नन्दीजी'

तथा 'अनुयोगद्वार' में वेद अज्ञानियों के बनाये हुए लिखे हैं. (११) आत्माराम (आनन्दविजय) सम्वेगी अपने बनाये हुए 'अज्ञानतिमिर भास्कर' ग्रंथ के प्रथम खण्ड के १५५ पृष्ठ में वेदों को निर्दय मांसाहारी कामियों के बनाये हुए लिखता है. (१२) दयानन्द सरस्वती वेदानुकूल श्राद्धादि क्रिया का और श्री गंगादि तीर्थस्नान का और मूर्तिपूजन का सन् १८७५ के छपे हुए 'सत्यार्थप्रकाश' में उपदेश करते हैं. और पीछे के छपे हुए में पूर्वोक्त मांसादि भक्षण का निषेध करते हैं; और एक२ स्त्री को एक विवाहित और दस नियोग, अर्थात् करेवे करने कहते हैं. और मुक्ति से पुनरावृत्ति (वापिस लौट आना) भी कहते हैं; अब क्या विद्वान् पुरुषों के चित्त में यह विचार नहीं उत्पन्न हुआ होगा कि न जाने वेदों में कौनसी बात है और वेदा-

नुकूल कौन कहते हैं? वास्तव में तो यह बात है कि वेदों का पाठी तो इन लोगों में कोई शायद ही हो परन्तु प्रत्येक वेदों के अज्ञ (नावाकिफ) वेदों के नाम का सहारा ले कर कोई उपनिषद् स्मृति आदिकों में से देशांश कहीं२ का ग्रहण कर के मनमानी कल्पना कर२ के वैदिक बन रहे हैं, और आज कल भी देखा जाता है कि यह दयानंदी लोग दयानंद के कथन पर भी विश्वस्त नहीं हैं; क्यों कि दयानन्द वाले 'सत्यार्थ प्रकाश' के प्रथम बारह समुल्लास थे इन्हों ने उसमें से आगे पीछे कर करा कर कुछ और अग्गम सग्गम मिला कर चौदह समुल्लास कर दिये हैं, और अन्त में वेदान्त अर्थात् इन सब वेदानुकूल मतों की नदियें नास्तिकमत समुद्र में जा मिलती हैं. इनही वेदानुयायीयों की बनायी हुई. गीताजी वसिष्ठ विचारसागर आनन्दामृतवर्षिणी आ-

दिक ग्रंथों से उक्त कथन प्रतीत हो जाता है."

॥ १३ वां प्रश्न ॥

आरियाः—तुम्हारे जैन शास्त्रो में मनुष्य आदिकों की आयु (अवगहना) आदि बहुतश लम्बी कही है सो यह सत्य है, वा गप्प है ?

जैनीः—जो सूत्रों में लिखा है सो सब सत्य है, क्यों कि यह गणधर कृत सूत्र त्रिकालदर्शी महापुरुषों के कहे हैं. और अतीत, अनागत, वर्त्तमानकाल अनादि प्रवाह रूप अनन्त है, किसी काल में सर्पिणी उत्सर्पिणी काल के प्रयोग से बल, धन, आयु, अवगहना आदिक का चढाव होता है, और कभी उतराव होता है, अर्थात् हमारे वृद्धों के समय में सौश वर्ष की प्रत्युत सौ से भी आयुवाले पुरुष प्रायः दृष्टिगोचर थे, और अब पचास वर्ष की कुटुम्बी जन मृत्यु के चिन्तक

हो जाते हैं. और अब अंग्रेज बहादुर की अमलदारी में रेल आदि कई प्रकार की कलें चल रही हैं; जो इनका वृत्तान्त सौ वर्ष से पहिले हमारे बडों के समय में कोई दूरदर्शी ज्ञानी कथन करता कि इस प्रकार की रेल आदिक चलेंगी, तो तुम सरीखे लघुदृष्टिवाले कब मानते? और आगे को जब किसी समय में रेल आदि का प्रचार नहीं रहेगा तो कोई इस समय के इतिहास में रेल का कथन करेगा तो प्रत्यक्ष प्रमाण—वर्त्तमान काल की बात को मानने वाले मूढ जन किस प्रकार से मानेंगे ? दीर्घकाल की बातों पर तो दीर्घदृष्टि वाले ही निगाह दौडाते हैं. अर्थात् कूंए का मेंडक समुद्र की सार क्या जाने ? और कुछ एक बारह वर्ष के अकाल आदिक में कई सूत्रों के विच्छेद हो जाने से गणित विद्या के हिसाब में भी भाषा का अन्तर हुआ प्रतीत

होता है. और ग्रंथकारो ने ग्रंथो में सूत्रों से विरुद्ध न्यूनाधिक बातें लिख धरी हैं. यथा वेदानुयायी सूत आदिकों नें वेद विरुद्ध पुराणों में कई गपौड़े कथा आदिक लिख धरे हैं. उन्ही पुराणों के गपौड़ों के प्रयोग से बहुत वादियों से पराजय हो कर बहुत से ब्राह्मण और वैष्णवों नें अपने ब्राह्मण धर्म्म को छोड़ कर अपने आपको अर्थात् ब्राह्मणों को पोप कहाने लग गये हैं. ऐसे ही कई एक जैनी लोग जैन सूत्रों के अङ्ग ग्रन्थों के गपौडों के प्रयोग से पराजय हो कर अपने सत्य धर्म से भ्रष्ठ हो गये हैं.

आरिया:—अजी, हमारे दयानन्द कृत सम्वत् १९५४ के छपे हुए 'सत्यार्थ प्रकाश' के बारहवें समुल्लास के ४५३ पृष्ठ में लिखा है कि जैनियों के 'रत्नसार ग्रंथ' के १४८ पृष्ठ में ऐसा लिखा है कि, जैनियों का योजन १०००० दस हजार कोस का होता है. ऐसे

चार हजार कोस का शरीर होता है. और बेइन्द्रिय शंख, कौमी, जूं आदिक का शरीर अडतालीस कोस का स्थूल होता है. यह गप्प है वा सत्य?

जैनीः—यह गप्प है, क्यों कि जैन शास्त्रों में दसहजार कोस का योजन और अडतालीस कोस की मोटी जूं कहीं भी नहीं लिखी है. जैन सूत्र 'समवायांग', 'अनुयोग द्वार' में एक जौं की मोटाई में आठ यूका आवें इतना प्रमाण लिखा है. परन्तु यह लेख तो केवल दयानन्दजी की मूर्खता का सूचक है. क्यों कि हम लोग तो जानते थे कि दयानन्दजी ने जो जो मतमतान्तरों की हैं उनके शास्त्रों के प्रमाण दे दे कर सो ठीक ही होवेंगी, परन्तु तुम्हारे कहने से और 'सत्यार्थ प्रकाश' के देखने से प्रतीत हुआ कि शास्त्र सूत्र कोई नहीं देखे होंगे, केवल सुने—सुनाये ही द्वेष के प्रयोग से गोले गरकाये हैं. यदि

कोई मतान्तरों के ग्रंथ आदि देखे भी होंगे तो गुरुगम्यता के विना, और मतपक्ष के नशे से बुद्धि में नहीं आये. और इस ही पृष्ठ की सोलहवीं पंक्ति में दयानन्द उपहास रूप लेख लिखता है कि अठतालीस कोस की जूं जैनियों के शरीर में ही पड़ती होगी हमारें भाग्य में कहां? सो हे भाई! जैनियों के तो अठतालीस कोस की जूं स्वप्नान्तर में भी प्राप्त नहीं हुई और नाही जैनियों के तीर्थंकरों ने कभी देखी, और ना जैन शास्त्रों में कहीं लिखी है. हां, अलबत्ता दयानन्दजी का ईश्वर तो कर्त्तमकर्त्ता था; यदि वह अठतालीस कोस की जूं बना कर दयानन्द को और उसके अनुयायियों को बखश देता तो इसमें सन्देह नहीं था. वाहवा! दयानन्दजी! तुम सरीखा निर्बुद्धि झूठे कलंकित वाक्य बोलने वाला और कौन होगा? परन्तु बड़े शोक की बात है कि ऐसे

मिथ्या लेख रूप पुस्तकों पर श्रद्धा करश्
धर्म के अजान पुरुष कैसेश् आंख मीच कर
अविद्यासागर में पतित हो रहे हैं!

॥ १४ वां प्रश्न ॥

आरियाः—सर्व मतों का सिद्धान्त
मोक्ष है. सो तुम्हारे मत में मोक्ष को ही ठीक
नहीं माना है.

जैनीः—किस प्रकार से?

आरियाः—तुम्हारे मुक्त चेतन अर्थात्
सिद्ध परमात्मा एक शिला पर बैठे रहते
हैं, उमरकैदी की तरह.

जैनीः—अरे भोले! तुम मोक्ष को
क्या जानो? क्यों कि तुम्हारे नास्तिक मत
में तो मोक्ष को मानते ही नहीं हैं; क्यों कि
मोक्ष से फिर जन्म होना अर्थात् वारश् मोक्ष
में जाना और वापिस आना मानते हो, तब
तो तुम्हारे कथनानुसार जीवों को अनन्त
वार मोक्ष हुई होगी, और अनन्त वार

होगी, क्यों कि यह क्रम तो अनादि अनन्त सृष्टि आदि का चला आता है, अब विचार कर देखो, कि यह तुम्हारे मत में मोक्ष (नय्यात) काहे की हुई? यह तो और योनियों की भ्रान्ति अवागमन ही रही. परन्तु तुम सीधे यों ही क्यों नहीं कह देते कि मोक्ष कुछ वस्तु ही नहीं है? क्यों कि तुम्हारा दयानन्द जी 'सत्यार्थ प्रकाश' १९५४ के २५७ पृष्ट पंक्ति १२ में मुक्ति को कारागार अर्थात् कैदखाना लिखता है कि उमर कैद से तो थोड़े काल की कैद, हमारे वाली ही मुक्ति अच्छी है. अब देखिये कि जिन्होंने मोक्ष को कारागार समझा है वह क्या धर्म करेंगे? इन नास्तिकों का केवल कथन रूप ही धर्म है. यथा वेदों का सार तो यज्ञ है और यज्ञ का सार वायु (हवा) की शुद्धि. यथा दशोपनिषद् भाषान्तर पुस्तक स्वामी अच्युतानंद कृत छापा मुंबई सम्बत् १९५२

का उसमें वृहदारण्यकोपनिषद् भाषान्तर प्रथम अध्याय के १२३ पृष्ठ की ८ वी ११ पंक्ति में लिखा है, कि अश्वमेध यज्ञ सब यज्ञों में से बड़ा यज्ञ है, तिसका फल भी संसार ही है; तो अग्निहोत्रादि का तो कहना ही क्या ? बस ना कुछ त्याग, न वैराग्य, न धर्म, न मोक्ष.

आरियाः—मुक्ति भी तो किसी कर्म ही का फल है. सो कर्म अवधि (हद) वाले होते हैं. तो फिर कर्म का फल मुक्ति भी अवधि वाली होनी चाहिये.

जैनीः—हाय ! अफसोस ! देखो, मुक्ति को कर्म का फल मानते हैं ! भला, यह तो बताओ कि मुक्ति कौन से कर्म का फल है ?

आरियाः—ज्ञान का, संयम का, तप का, और ब्रह्मचर्य्य का.

जैनीः—देखो, पदार्थ ज्ञान के अज्ञ (अज्ञान) ज्ञान आदि को कर्म बताते हैं !

आरियाः—हम तो सब को कर्म और कर्म का फल ही समझ रहे हैं.

जैनीः—तब तो तुम्हें यह भी मानना पमेगा कि ईश्वर भी किसी कर्म का फल भोग रहा है, और फिर कर्म हहवाले होने से कर्म फल भोग के ईश्वर से अनीश्वर हो जावेगा. और जो अब ईश्वर दण्ड देना, जीवों को सुखी दुःखी करना सृष्टि बनानी, और संहार करना, आदिक नये कर्म करता है, उनका फल आगेको किसी और अवस्था में भोगेगा; क्यों कि भर्तहरिजी अपने रचे हुए 'नीतिशतक' में भी लिखते हैंः—

(श्लोकः)

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे।
विष्णुर्येन दशावतार ग्रहणे क्षिप्तो महासंकटे॥
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः।
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मैनमः क-
र्मणे ॥ १६ ॥

अर्थः—जिस कर्म ने ब्रह्मा को कुम्हार की न्यांई निरन्तर ब्रह्माण्ड रचने का हेतु बनाया, और विष्णु को बार२ दश अवतार ग्रहण करने के संकट में डाला, और रुद्र को कपाल हाथ में ले कर भिक्षा मांगने के कष्ट में रक्खा, और सूर्य्य को आकाश में नित्य भ्रमण के चक्र में डाला, ऐसे इस कर्म को प्रमाण है! अब इससे सिद्ध हुआ कि ब्रह्मा आदिक सब कर्मों ही के आधीन हैं, और कर्मों के फल भुगताने में कोई भी समर्थ नहीं है. यथा दृष्टान्तः—किसी एक नगर में एक धनी के घर एक पुत्र उत्पन्न हुआ. जब वह पांच वर्ष का हुआ तो कर्म योग उस की आंखें बिमारी हो कर बिगड़ गई, अर्थात् अंध हो गया. तब उस साहुकार ने वैद्य वा डाक्टरों से बहुत इलाज करवाये परन्तु अच्छा न हुआ. तब वह शाहूकार अपने भाई वा पञ्चों के पास गया, कि तुम पञ्च ब-

रादरी के रक्षक हो, मेरे पुत्र की आंखें अच्छी करो. तो पञ्च बोले कि जाई! तूं उसका इलाज करवा. शाहूकार ने कहा कि मैंने इलाज तो बहुत करवाये हैं, परन्तु वह अच्छा नहीं हुआ. अब आप लोगों की शरण आया हूं. तब उन्होंने कहा कि हम पञ्चों को तो बरादरी का झगड़ा तैह करने का अख्तियार है, परन्तु ऐसे कर्मरोग के हटाने में हमारी सामर्थ्य नही है. तब वह शाहूकार लाचार हो कर अदालत में गया. वहां जा कर दरखास्त की कि आप प्रत्येक का इनसाफ करके दुःख दूर करते हो, मेरे पुत्र के नेत्र भी अच्छे कर दीजिये. तब अदालत ने कहा कि तुम इसको शफाखाने ले कर किसी डाक्टर से इलाज करवाओ. शाहूकार ने कहा कि मैंने बहुत इलाज करवाया है, आप ही कुछ इनसाफ करो, कि जिससे इसकी आंखें अच्छी हो जावें. तब अदा-

लत ने कहा कि यहां तो दीवानी और फौजदारी के फैसले करने का अख्तियार है, कर्मों के फैसले करने में हमारी शक्ति नहीं है. तब वह शाहूकार दरजेबदरजे राज दर्बार में पहुंचा, और पहुंच कर प्रार्थना की, तो राजा ने कहा कि बडे मास्टरों से इसका इलाज कराओ, तो शाहूकार बोला कि मैं बहुत इलाज कर चुका हूं; आप प्रजा के रक्षक हो सो मेरे दीन पर भी कृपादृष्टि करो, अर्थात् मेरा दुःख दूर करो, क्यों कि आप राजा हो, सब का न्याय करते हो, तो मेरे पुत्र का कर्मों से क्या फैसला न करवाओगे? राजा ठहर कर बोला कि राजा तथा महाराजा सब सांसारिक धन्दों के फैसले कर सकते हैं, परन्तु कर्मों का फैसला करने का किसी को भी अख्तियार नहीं है, कर्मों का फैसला तो आत्मा और कर्म मिल कर होता है. बस, अब देखिये कि जो लोग ईश्वर को कर्मफल

भुगताने में राजा की नजीरें देते हैं, उनका कहना कैसा कि मिथ्या, जिस प्रकार से राजा आदिक कर्मों के फलों में दखल नहीं दे सकते उसी प्रकार ईश्वर भी पूर्वोक्त राजा की तरह कर्मों के फल में दखल नहीं दे सकता.

आरियाः—तुम ही बताओ कि पूर्वोक्त कर्म क्या होते हैं? और ज्ञानादिक क्या होते हैं? और मुक्ति क्या होती है?

जैनीः—हां,हां;हम बतावेंगे.कर्म तो परगुण अर्थात् जड गुण, काम क्रोधादिक के प्रभाव से विषयार्थी हो कर हिंसा, मिथ्यादि समारंभ करने से अन्तःकरण में मल रूप पूर्वोक्त जमा हो जाते हैं, उनका नाम. और ज्ञान आदि निज गुण अर्थात् चेतन गुण स्वाध्याय ध्यान आदि अभ्यास कर के अनादि अज्ञान का नाश हो कर निज गुण के प्रकाश होनेका नाम है. और मुक्ति-पूर्वोक्त परगुण अर्थात् कर्म के बंध से मुक्ति पाने

(छूट जाने) का और निजगुण प्रकाश हो कर परम पद में मिल जाने का नाम है.

आरियाः—मुक्ति की और ज्ञान की उत्पत्ति हुई है तो कभी विनाश भी अवश्य ही होगा, अर्थात् फिर भी बंध में पड़ेगा.

जैनीः—लो देखिये, अज्ञानियों की बात! मुक्ति की और ज्ञान की उत्पत्ति कहते हैं! अरे भोले! यह मुक्ति की और ज्ञान की उत्पत्ति हुई वा अनादि निजगुण का प्रकाश हुआ? उत्पत्ति तो दूसरी नई वस्तु पैदा होने का नाम है, जैसे कैदी को कैद की मोक्ष होती है तो क्या यह भी नियम है कि कैद कितने काल के लिये छूटी? अपि तु नहीं. कैद की तो मियाद होती हैं परन्तु छूटने की मियाद नहीं है; हमेश के लिये छूटता है. विना अपराध किये कैद में कभी नहीं आता है. मुक्ति में तो कुच्छ कर्म करता ही नहीं, जो फिर बंधन में आवे. इस लिये मुक्ति सदा ही रहती है, यथा

योगी योगाभ्यास आदि तप कर के अज्ञान का नाश करें और ज्ञान का प्रकाश होवे, तो वह ज्ञान का प्रकाश क्या मियाद बांध कर होता है, कि इतने काल तक ज्ञान रहेगा! अपितु नहीं; सदा के वास्ते. इस कारण तुम्हारे वाली मुक्ति ठीक नहीं. यथा तुमारे ऋग्वेद भाष्य भूमिका आदिक पुस्तकों में लिखा है कि चार अर्ब वीस किरोड़ वर्ष प्रमाण का एक कल्प होता है, सो ईश्वर का दिन होता है. अर्थात् इतने काल तक सृष्टि की स्थिति होती है; जिसमें सब जीव शुभ वा अशुभ कर्म करते रहते हैं. फिर चार अर्ब बिस किरोड़ वर्ष प्रमाण विकल्प अर्थात् ईश्वर की रात्रि होती है अर्थात् ईश्वर सृष्टि का संहार कर देता है. परमाणु आदि कुच्छ नही रहते हैं. और सब जीवों की मुक्ति हो जाती हैं. अर्थात् पूर्वोक्त विकल्प काल ईश्वर की रात्रि में सब जीव सुख में सोये रहते हैं. फिर वि-

कल्प काल पर्य्यन्त कल्प के आदि में ईश्वर सृष्टि रचता है तब सब जीव मुक्ति से सृष्टि पर भेज दिये जाते हैं. फिर वह शुभ और अशुभ कर्म करने लग जाते हैं. यह सिल-सिलायों ही अनादि से चला आता है.

समीक्षाः—भलाजी! यह मुक्ति हुई वा मजदूरों की रात हुई? जैसे दिन भर तो मजदूर मजदूरी करते रहे, रात को फावड़ा टोकरी सराहणे रख कर सो गये, और प्रातः उठते ही फिर वही हाल! परन्तु एक और भी अन्धेर की बात है कि जब कल्पान्त समय सब जीवों का मोक्ष हो जाता है, तो जो कसाई आदिक पापिष्ट जीव हैं उनको तुम्हारे पूर्वोक्त कथन प्रमाण बड़ा लाभ रहता है. क्यों कि तुम्हारे परमहंस आदि धर्मात्मा पुरुष तो बडे२ कष्ट सन्धा, गायत्री, यज्ञ, होम, समाज, वेदाभ्यास आदि परिश्रम द्वारा मुक्ति प्राप्त करते हैं; और वह कसाई आदि महापापी

पुरुष गोवधादि महाहिंसा और मांस भक्षणादि अथवा परस्त्रीगमनादि अत्याचार करते भी कल्पान्त में सहज ही अनायास मुक्ति प्राप्त करते हैं. अब नेत्र उघाड़ कर देखो कि तुम्हारे उपदेश के अनुकूल चलने वाले पूर्वोक्त परमहंस आदिकों की क्या अधिकता रही? और उन पापिष्ठों की क्या न्यूनता रही? क्यों कि विकल्प के अन्त में क्या सन्यासी क्या कसाई सब को एक ही समय मुक्ति से धक्के मिल जावेंगे. और इसी कर्त्तव्य पर ईश्वर को न्यायकारी कहते हो? बस, जो महा मूढ होंगे वह ही तुम्हारी कही मुक्ति को मानेंगे.

आरिया:—हांजी, समाजियों में तो ऐसे ही मानते हैं; परन्तु हां इतना भेद तो है कि जैसे बारह घण्टे का दिन और बारह घण्टे की रात्रि; सो धर्मात्माओं को तो कुछ घण्टा दो घण्टा पहिले मुक्ति मिल जाती है और पापी आदिक सब जीवों को बारह घण्टे की

मुक्ति होती है.

जैनीः—हाय हाय! यह मुक्ति क्या हुई? यह तो महा अन्याय हुआ, क्यों कि धर्मात्माओं का धर्म निरर्थक हुआ और पापी पुरुषों का पाप निष्फल गया. क्यों कि पाप करते हुए को भी बारह घण्टों की मुक्ति मिल जाती है. तो उनके पाप निष्फल गये और धर्म्म करते भी बारह घण्टे की मुक्ति; तो उनके धर्म निष्फल गये. क्या हुआ यदि तेरह चौदह घण्टे की मुक्ति हो गई तो? यथा खञ्जर तले किसीने टुक दम लिया तो फिर क्या? और तुमने जो प्रश्न किया था कि तुम्हारे मत में मुक्ति में ही बैठे रहते है सो मुक्ति क्या कोई हमारे घर की है? मुक्ति नाम ही सर्व दुःखों से, सर्व क्रिया से, सर्व कर्मों से, जन्म--मरण (अवागमन) से, मुक्त हो जाने अर्थात् रहित हो जाने का है. फिर तुमने कहा कि कैदी की तरह, सो इसका उत्तर

तो हम आगे देंगे, परन्तु तुमसे हम पूछते हैं कि पूर्वोक्त मुक्त चेतन एक जगह स्थित न रहे तो क्या इस लोक के ऊंच नीच स्थानों में घूमता फिरे ? अर्थात् भ्रमर बन कर बागों के फूलों में टक्करें मारता फिरे ? अथवा कृमि बन कर खाईयों (मोरियों) में सुख खाता फिरे ? अथवा किसी और प्रकार से ? अरे भाई ! तुम कुछ बुद्धि द्वारा भी विचार कर देखो, कि जैसे नकारे पामर (गरीब) लोग गली२ में भटकते फिरते नजर आते हैं, ऐसे श्रेष्ठ सुखी पदवीधर अर्थात् बड़े ओहदेवाले भी गली२ में भटकते देखे हैं ? अपितु नहीं. कारण क्या ? जितनी निष्प्रयोजनता होगी उतनी ही स्थिति अधिक होगी. सो हे भाई ! तुम कैद के अर्थ नहीं जानते हो; कैद नाम तो पराधीनता का होता है, स्थित रहने का नहीं है. यथा, मैं जो इस ग्रंथ की रचिता (कर्त्ता) हूं सो विक्रम सम्वत् १९१० के साल में नि-

क्ट शहर आगरा जमींदार ज्ञातीय माता ध-
नवन्ती, और पिता बलदेवसिंह के घर मेरा
जन्म हुआ, और फिर मैंने पूर्व पुण्योदय से
सम्बत् १९३४ के साल में जैनमत में सती
का योग (संयम) ग्रहण किया, और फिर
हमेश ही साधवीयों के साथ नियमपूर्वक वि-
चरते हुए, दिल्ली, आगरा, पञ्जाब स्थल में
रावलपिण्डी, स्यालकोट, लाहौर. अमृतसर,
जालंधर, होश्यारपुर. लुद्दहाना, पटियाला,
अम्बाला, आदिक गांव नगरों में धर्मोपदेश
सभा समीक्षा करते रहते हैं. और बुद्धि के
अनुसार जयविजय भी होती ही रहती है.
फिर विचरतेश जयपुर, जोधपुर, पाली, उद-
यपुर आते हुए १९५६ के साल माघ महीने
में अजमेर के पास एक रजवाड़ा रियास्त शा-
यापुर में चार पांच दिन तक मुकाम किया,
और वहां तीन दिन तक सभा, समीक्षा, ध-
र्मोपदेश किया, जिसमें ओसवाल, राजपूत,

ब्राह्मण, वैष्णव, समाजी, आदिक हजार वा डेढ हजार के लगभग स्त्रियें वा पुरुष सभा में उपस्थित थे. और दिन के आठ बजे से दस बजे तक व्याख्यान होने के अनन्तर दयानन्दी पुरुषों में से, दो आदमीं कुच्छ प्रार्थना करने के लिये आज्ञा मांगी. तदनन्तर हमने भी एक घण्टा और सभा में बैठना मंजूर किया. तब उन्होंमें से एक भाईने सभा में खडे हो कर लैक्चर दिया, कि जैनआ-र्य्याजी श्रीमती पार्वतीजी ने दया सत्यादि का अत्युत्तम उपदेश किया, इसमें हम कुच्छ भी तर्क नहीं कर सकते हैं, परन्तु इनके 'रत्नसार', नामक ग्रंथ में लिखा है कि जैन मत के सि-वाय और मतवालों से अप्रियाचरण करना, अर्थात् हतना चाहिये; भला देखो इनकी यह कैसी दया है? तब कई एक सभासद पर-स्पर कोलाहल (बुम्बुमाट) करने लगे. तब हमने कहा कि भाई! इसको भी मन

उपजी कह लेने दो. तब लोक चुप कर बैठे. उसने अपने प्रश्न को सविस्तर कहा. अनन्तर हमने उत्तर दिया कि, हमारे प्रमाणिक सूत्रों मे ऐसा भाव कहीं भी नहीं है. और जो तुमने ग्रंथ का प्रमाण दिया है, उस ग्रंथ को हम प्रमाणिक भी नहीं समझते हैं. परन्तु तुम्हारे दयानन्द कृत 'सत्यार्थप्रकाश' नामक पुस्तक संवत १९५४ के छपे हुए पृष्ठ ६३० में ऐसा लिखा है, कि और धर्मी अर्थात् वेदादि मत से बाहिर चाहे कैसा ही गुणी भी हो उसका भी नाश अवन्नति और अप्रियाचरण सदा ही किया करें. अब तुम देख लो यह दयानन्द की कैसी दया हुई? फिर कहा, कि अजी! हमारे दयानन्दजी ने 'सत्यार्थप्रकाश' के बारहवें समुल्लास के ४६७ पृष्ठ में प्रथम ही ऐसा लिखा है कि देखो इनका वीतराग भाषित दयाधर्म दूसरे मतवालों का जीवन भी नहीं चाहते हैं! तब

हमने उत्तर दिया, कि जैनियों की दया तो सर्वत्र प्रसिद्ध है. देखो 'इम्पीरीयल गैजेटियर' हिन्द जिल्द ६ठी दफादोयम, सन् १८८६ के १५ए पृष्ठ में ऐसा लिखा है, कि जैनी लोग एक धनाढ्य फिरका है अमूमनथोक फरोशी और हुण्डी चिठी के कारोबार करते हैं; बल्के आपस में बफामेज जोल रखते हैं. यह लोग बडे खैरायत करने वाले हैं. और अक्सर हैवानों की परवरिश के वास्ते शिफाखाने बनवाते हैं, इति. परन्तु तुम सरीखे भोले लोगों के मत गुमान रूपी रोग से विद्या रूपी नेत्र मींच हो रहे हैं. तांते औरों के तो अनहोते दूषण देखते हैं और अपने होते दूषण भी नहीं देखते. इसी 'सत्यार्थ प्रकाश' के ग्यारहवें समुल्लास के ३५६ पृष्ठ की ५ वीं वा ६ठी पंक्ति में दयानन्दजी क्या लिखते हैं? कि इन भागवत आदि पुराणों के बनाने वाले क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट हो गये ? वा जन्मते ही

समय मर क्यों न गये? और ४३२ पृष्ठ के नीचे लिखता है कि जो वेदों से विरोध करते हैं उनको जितना दुःख होवे उतना थोडा है. अब देख तेरे दयानन्दने अन्य मतों पर कैसी दया करी? होय! अफसोस! अपनी मंजी तले सोटा नहीं फेरा जाता. यथा.

दोहा.

आप तो सोध्या नहीं, सोधे चारों कूंट;
बिल्ली खेद पडौसियां, अपने घर रहो ऊंट.

फिर कहने लगा कि,अजी! यह क्या बात है हमारे 'सत्यार्थप्रकाश' के ४६२ पृष्ठ में दयानन्दजी लिखते हैं कि जैनी लोग अपने मुखसे अपनी बडाई करनी और अपने ही धर्म को बडा कहना; यह बडी मूर्खता की बात है. तब हमको जरा हंसी आ गई और कहा कि भला तुमारा दयानन्द तो अपने माने हुए धर्म को छोटा कहता होगा! और औरों को बडा कहता होगा! अरे भोले! 'सत्यार्थप्र-

काश' को आंख खोल कर देख, और बांच, कि इसमें प्रत्येक मतानुयायी पुरुषों को अ-क्ल के अन्धे, चांडाल, पोप, आदिक अप-शब्द कह कर अर्थात् गाली आदि दे कर लिखा है. खैर, भला तुम हमको एक यह तो बताओ कि तुम्हारे दयानन्द का ईश्वर सा-कार है वा निराकार ? और सर्वव्यापक है वा एकदेशी है ? तब उसने उत्तर दिया कि निराकार और सर्वव्यापक है. तो हमने पूछा कि, तुम्हारे ईश्वर बात करता है वा नहीं ? तब उसने हंस कर कहा कि कभी निराकार भी बोल सकते हैं ? हमने कहा कि बस! अब तेरी उक्त दोनों बातों का हम खंडन करते हैं. देख, 'सत्यार्थ प्रकाश' के सातमे समुल्लास सब के १८८ पृष्ठ के नीचे की ९वी पंक्ती में लिखते हैं, कि ईश्वर सब को उपदेश करता है, कि हे मनुष्यों ! मैं सब का पति हूं, मैं ही सब को धन देता हूं और भोजन

दे कर पालन पोषण करता हूं, और मैं सूर्य की तरह सब जगत् का प्रकाशक हूं, ज्ञान आदिक धन तुम मुझ ही से मांगो, मैं ही जगत् को करने, धरने वाला हूं, तुम लोग मुझे गैर कर किसी दूसरे को मत पूजो. (सत्य मानो). अब देख जोले! जैनी तो मनुष्य मात्र हैं, अपनी बमाई करते होंगे, वा न करते होंगे, परन्तु तुम्हारा तो ईश्वर ही स्वयं अपनी बमाई करता है और कहता है कि मुझे ही मानो, और सब का त्याग करो! फिर और देखो बमे आश्चर्य्य की बात है कि ईश्वर कहता है कि मैं धन देता हूं, और जोजनादि दे कर पालन करता हूं, परन्तु लाखों मनुष्य निर्धन पमे हैं, क्या उनको देनेके लिये ईश्वर के खजाने में धन नहीं रहा? और दुर्भिक्ष (अकाल) पमने पर लाखों मनुष्य और पशु जूख ही सें मर जाते हैं; क्या ईश्वर के गल्ले में अन्न नहीं रहता होगा?

और दूसरे क्या दयानन्द को तेरी तरह ज्ञान नहीं था कि निराकार और सर्व व्यापी काहे से, और कहां से, और कैसे बात कर सकता है? लिखते तो इस प्रकार से हैं कि मानो दयानन्द के कान में ही ईश्वर ने ओठे आदमीयों की तरह बातें करी हों. परन्तु यह ख्याल न किया कि क्या सब ही मेरे कहने को हांज़ करेंगे? अपितु विद्वान पुरुष ऐसे भी तो विचारेंगे कि वाणी (बात) करनी तो कर्मेन्द्रिय का कर्म होता है; तो क्या ईश्वर के कर्मेंद्रिय आदिक शरीर होता है? वस कुच्छ समझना भी चाहिये. अब कहोजी! तुम्हारे स्वामीजी के ऐसे वचनों पर क्या धन्यवाद करें? तब वह तो निरुत्तर हुआ. परन्तु इन दयानन्दियों में यह विशेष कर दम्नजाल है कि एक निरुत्तर हुआ और दूसरे ने एक और ही अनघडित सवाल का फन्द लगाया. खैर! फिर दूसरे समाजिये ने खडे हो कर लैकचर

दिया, कि अजी! इनका और ज्ञान तो ठीक है परन्तु जो सर्व धर्म का सार मुक्ति है वह ठीक नहीं है. क्यों कि यह मोक्ष रूप चेतन को शिला के ऊपर एक महदूद जगह में हमेश ही रहना मानते हैं, कहो जी! वह मुक्ति क्या हुई? एक आयु भर की कैद हुई! तब हमने देखा कि यह वेगुरे प्रत्येक मत के दोषान्वेषी अर्थात् अवगुणग्राही हैं, सूत्रअर्थ को तो जानते ही नही हैं. यहां तो युक्ति प्रमाण से ही समझाना चाहिये. तब सभा के बीच में एक राजपूत सर्दार अस्सी वर्ष के लगभग की आयु वाला बैठा हुआ था और हमने उस ही की ओर निगाह कर के कहा, कि भाई! तुम्हारी कितने बर्ष की आयु है? तो उसने कहा ८० बर्ष की है.

हमः—तुम्हारा जन्म कहां हुआ है?

राजपूतः—शायपुरमें.

हमः—जब से अब तक कहां रहे?

राजपूतः—शायपुरमें.

हमः—ओहो! अस्सी वर्षसे कैदमें हो? अर्थात् इस अनुमान से आध मील महदूद गांव में ही कैदी हो, और जब तक जीओगे इसी गांव में रहोगे वा कहीं लाहौर, कलि-कत्ता, जयपुर, जा कर रहोगे वा घूमते फिरोगे?

राजपूतः—यहां ही रहूंगा; मुझे क्या आवश्यक्ता है जो कि जगह२ रहूं वा कहीं२ घूमता फिरूं?

हमः—तो क्या तुम उमरकैदी हो?

राजपूतः—कैदी किसका हूं; मैं तो स्व-इच्छा और स्वाधीन यहां ही का बासिंदा हूं. मेरा कोई काम अरे तो परदेश में भी जाऊं नहीं तो क्यों जाऊं?

हमः—भला! यदि तुमको राजा साहिब की आज्ञा हो कि तुम एक मास तक शायपुर से कहीं बाहिर नहीं जाने पावोगे तब तुम क्या करो?

राजपूतः—तो हम घना ही धन व्यय कर दें और सर्कार से विज्ञप्ति (अर्ज) करें कि हमसे क्या अपराध हुआ, जो आप हमें गांव से बाहिर नहीं जाने दो हो, और वकील भी खड़ा करें, इत्यादि.

हमः—भवाजी ! तुम अस्सी वर्ष से यहां ही रहते हो, तबसे तो घवराये नहीं, जो एक महीने की रुकावट हो गई तो क्या हुआ, जो इतनी सिफारशें और घवराहट करना पड़ा ?

राजपूतः—अजी, महात्माजी ! वह तो अपनी इच्छा से रहना है, यह परवश का रहना है सो कैद है.

हमः—बस, जो पराधीन अर्थात् किसी ज़ोरावर की रुकावट से एक स्थान में रहे तो वह कैद है, परन्तु सच्चिदानन्द मोक्ष रूप आत्मा स्वाधीन सदा आनन्द रूप है इसको कैद कहना मूर्खों का काम है. तब वह समा-

जिये निरुत्तर हो कर चले गये, और सभा विसर्जन हुई, यहां मुक्ति के विषय में पूर्वोक्त प्रश्न समतुल्य होने के कारण यह कथन याद आने से लिखा गया है.

॥ १५ वां प्रश्न ॥

आरियाः—भलाजी! तुम मोक्ष से छूट कर अर्थात् वापिस आना तो नहीं मानते हो और सृष्टि अर्थात् लोक को प्रवाह से अनादि मानते हो, तो जब सब जीवों की मुक्ति हो जावेगी तो यह सृष्टि क्रम अर्थात् दुनिया की सिलसिला बन्द न हो जायगा?

जैनीः—ओहो! तो क्या इसी फिकर से शायद पुनरावृत्ति मानी है अर्थात् मुक्ति से वापस आना माना है? कि संसार का सिलसिला वन्द ना हो जाय; परन्तु मुक्ति की खबर नहीं कि मुक्ति क्या पदार्थ है? यथा कहावत है "काजी! तुम क्यों दुबले? शहर के अन्देशे." परन्तु संसार का सिलसिला अब तक तो ब-

न्द हुआ नहीं, यदि आगे को बन्द हो जावगा तो मोक्षवालों को कुछ हानि भी नहीं है. क्यों कि सब धर्मात्माओं का यही मत है, कि इस दुःख रूपी संसार से छुटकारा होवे अर्थात् मुक्ति (अनन्त सुख की प्राप्ति) हो, तो हमारी बुद्धि के अनुसार सब की इच्छा पूर्ण होय तो अच्छी बात है, परन्तु तुम यह बतलाओ कि लोक में जीव कितने हैं?

आरिया:—असंख्य होंगे, वा अनन्त.

जैनी:—झिजकते क्यों हो? साफ अनन्त ही कहो; तो अब अनन्त शब्द का क्या अर्थ है? न अन्ते, अनन्ते; तो फिर अनादि की आदि कहनी, और अनन्त का अन्त कहना, यह दोनों ही मिथ्या हैं. और इसका असली परमार्थ तो पूर्वक षट्द्रव्य का स्वरूप गुरू कृपा से सीखा वा सुना जाय तब जाना जाता है. यथा कोई विद्यार्थी किसी पण्डित के पास हिसाब सीखने को आया, तब पण्डित

बोला कि लिख,एक२ दो दो दूनीचार;तो शिष्य बोला कि मुझे तो किरोड़को किरोड गुणा करना अर्थात् जरब देना, तकसीम देना, समझाओ. भला, जब तक दो दूनी चार भी नहीं जानता तब तक किरोडों के हिसाब को बुद्धि कैसे स्वीकार करेगी ? जब पढते२ पाठक की बुद्धि प्रबल पण्डित के तुल्य हो जावेगी तब ही किरोड़ों के हिसाब को समझेगा.

आरियाः—यूं तो तुमारे सूत्रों को पढते पढते ही बूढे हो जावेंगे तो समझेंगे कब ?

जैनीः—अरे भाई ! जो पेट भराई की विद्या फारसी अङ्गरेजी आदिक बड़े परिश्रम से बहुत काल में आती है, कभी२ अनुत्तीर्ण (फेल) हो जाता है, और कभी उत्तीर्ण (पास) होता है, फिर कोई२ बी. ए, एम्. ए. पास करते हैं. तो तुम स्कूल में बैठते ही मास्टर से यों ही क्यों नहीं कह देते;

कि हमतो ए, बी, सी, डी, नहीं सीखते, हमारी बुद्धि में तो आज ही बी. ए, एम्. ए, वाली बातें बुद्धि से ही समझा के वकालत का ऊंचा दिलवा दो; नहीं तो इतनी २ बड़ी किताबें पढते२ ही बूढे हो जांयगे. भला, ऐसे हो सकता है ? कदापि नहीं. तो फिर यह पूर्ण परमार्थ रूप अनादि अनन्त मुक्ति आदिक वर्णन (बयान) विना सत्शास्त्रों के अवगाहे कैसे जाना जावे? तांते कुछ वीतराग भाषित सूत्रों को सीखो, सुनो, ना तो सत्यवादियों के वाक्य पर श्रद्धा ही करो; यदि तुम्हारी सी तरह ईंट मारवें प्रश्नों के उत्तर में ही पूर्वोक्त अर्थ दलील में आ जाता तो सर्वज्ञ और अल्पज्ञ—विद्वान् और मूर्ख की बात में भेद ही क्यों होता ? सब ही सर्वज्ञ और विद्वान् हो जाते. अल्पज्ञ और मूर्ख कौन रहता ? हे भाई ! दलील में सम्पूर्ण ज्ञान नहीं आ सकता; यथा समुद्र का जल न तु लु-

टिया, न लोटे, न घडे, न मटे में ही आ सकता है. हां! स्वाद मात्र से तो सारांश समुद्र का आ सकत है; यथा खारा, वा, मीठा. ऐसे ही सर्वज्ञों के कहे हुए शास्त्र अर्थ समुद्र के जल वत् अनन्त हैं. दलील रूपी लूटिया में नहीं आ सकते. और दलील जो तो पूर्वोक्त विद्वानों के वचन सुन२ कर ही बनी होती है.

बस पूर्व कहे प्रश्नोत्तरों से सिद्ध हो चुका कि ईश्वर कर्त्ता नहीं है. और नाही ईश्वरोक्त वेद हैं; क्यों कि वेदों में पशुवध करना, और मांस खाना लिखा है, यथा मनुस्मृति के पांचवें अध्याय के २७, २८, २९ वें श्लोक में लिखा है:—

श्लोक.

प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानां च काम्यया॥
यथा विधि नियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये॥२७॥
प्राणस्यान्नमिदं सर्वं प्रजापति रकल्पयत्॥
स्थावरं जङ्गमं चैव सर्वं प्राणस्य भोजनम्॥२८॥

अर्थः—ब्राह्मणों की कामना मांसभक्षण करने की हो तो यज्ञ में प्रोक्ष विधि से अर्थात् वेद मंत्रानुसार शुद्ध कर के भक्षण कर लें. श्राद्ध में मधुपर्क से, मांस मधुपर्क इति, और प्राणरक्षा के हेतु विधि के नियम से. ॥२७॥

प्राण का यह सम्पूर्ण अन्न प्रजापति ने बनाया है. स्थावर और जङ्गम सम्पूर्ण प्राण का भोजन है. ॥२८॥

श्लोक.

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयं भुवा ॥
यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद् यज्ञे वधोऽवधः
॥ २९ ॥

अर्थः—ब्रह्माजी ने स्वयमेव ही यज्ञ की सिद्धि की वृद्धि के लिये पशु बनाये हैं. इस लिये यज्ञ में पशुवध अर्थात् यज्ञ में पशु मारने का दोष नहीं है. इति ॥२९॥

तर्कः—जब कि धर्मशास्त्र मनुस्मृति ही वेदों के आधार से यों पुकारती है, तो पाप-

शास्त्रों का कहना ही क्या? और यहां इस विषय में वेदमंत्रो के लिखने की भी आवश्यकता (जरूरत) थी, परन्तु ग्रंथ के विस्तार के भय से नहीं लिखे हैं, और दूसरे हमारे जैनी भाईयों में से इस विषय में कई एक पुस्तक छप चुके हैं. बस! यदि ऐसे वेद ईश्वरोक्त हैं तो वह ईश्वर ही ठीक नहीं है. यदि ईश्वर के कहे हुए वेद नहीं हैं तो वेदों का कथन ईश्वर को पूर्वोक्त कर्त्ता कहने आदिक में प्रमाण नहीं हो सकता.

पृच्छकः—सत्य शास्त्र कौनसे हैं? और प्रथम कौनसे हैं?

उत्तरः—सत्य और असत्य तो सदा ही से हैं. परन्तु असली बात तो यह है कि जिन शास्त्रों में यथार्थ जड़, चेतन, लोक, परलोक, बंध, मोक्ष, आदि का ज्ञान हो और शास्त्रानुयायियों के नियम आदि व्यवहार श्रेष्ठ हो, वही सत्य हैं और वही प्रथम हैं.

परन्तु पक्ष में तो यों जैनी कहेंगे कि जैन पहिले है और वेदानुयायी कहेंगे कि वेद पहिले है और मतवाले कहेंगे कि हमारा मत पहिले है. यह तो झगडा ही चला आता है; जेसे कोई कहता है कि मेरे बडों के हाथ की सन्दूक बहुत पुरानी है; और पीली२ अशरफीयों की भरी हुई है परन्तु ताले बन्द हैं, दूसरा बोला कि, नहीं, तुम्हारे नीली अशरफियों की है, हमारे बडों की पीली है. यों कह२ कर कितने ही काल तक झगडते रहो क्या सिद्ध होगा? योग्य तो यों है कि सभा के बीच अपनी२ सन्दूक खोल धरें; ते सभासद स्वयं ही देख लेंगे कि पीली किसकी हैं और नीली किसकी हैं. और बुद्धिमानों की विद्याप्राप्ति का सार भी यही है कि परस्पर धर्म स्नेह आकर्षण बुद्धि से, सत्य, असत्य का निर्णय करें; फिर सत्य को ग्रहण करें, और असत्य को त्यागें; जिससे यह मनुष्यजन्म भी सफल होवे. परन्तु ऐसा

मिलाप कलियुगदूत ने भला कब होने दिया?
यद्यपि वर्मों की शिक्षा हैः—
मत मतान्तर विवाद में, मत उरझो मतिमान्।
सार ग्रहो सब मतन का, अपनी मति समान॥
निज आतम को दमन कर पर आतम को चीत।
परमातम का भजन कर यही मत परवीण॥

प्रश्न १६.

पृच्छकः—अजी! आपने १२ वें प्रश्न के अंते लिखा है, कि वेदान्ती नास्तिक है, अर्थात् वेदानुयायी आदिमें तो लोक, परलोक, आदिक आस्तिक प्रवृत्ति मानते हैं; परन्तु अन्तमें नास्तिक मत ही सिद्ध होता है सो कैसे है?

उत्तरः—हमारी एक दो वार वेदान्तियों से कुछ चर्चा भी हुई, और वेदान्त के एक दो ग्रंथ भी देखने में आयें, उनसे यह ही प्रगट हुआ कि यह वेदान्ती अद्वैतवादी नास्तिक हैं. अर्थात् वेदान्ती नास्तिक ऐसे क-

हते हैं,कि एक ब्रह्म ही है और दूसरा कुछ भी पदार्थ नहीं है, इस में एक श्रुतिका प्रमाण भी देते हैं. " एक मेवाद्वितीयं ब्रह्म "

(१)

जैनीः—ब्रह्म चेतन है वा जड़?

नास्तिकः—चेतन.

जैनीः—तो फिर जड़ पदार्थ चेतन से न्यारा रहा. यह तो दो पदार्थ हो गये; (१) चेतन और (२) जड़. क्यों कि जड़ चेतन दोनों एक नहीं हो सकते हैं. किसी प्रयोग से मिल तो जाय परन्तु वास्तव में एक रूप नहीं होते हैं, क्षीर नीरवत्. और वेदान्ती आनन्द-गिरि परमहंस कृत आनन्दामृत वर्षिणी नाम पुस्तक विक्रमी संवत १९५३ में बंबइ छपी जिसके प्रथम अध्याय के १८ वें पृष्ठ में लिखा है कि प्रथम श्रुतिने देह आदि को आत्मा कहा, और जीव ईश्वर से गुणका भेद कहा, फिर उसका निषेध किया.

तर्कः---प्रथम ही एक निर्गुण ब्रह्म का उपदेश क्यों नहीं किया ?

उत्तरः--जो श्रुति प्रथम ही ब्रह्म का बोध न करती, तो ब्रह्म के अति सूक्ष्म होने से इस जीव को ब्रह्मका कदापि बोध न हो सकता.

जैनीः—देखो ! इस लेख से भी द्वैतभाव सिद्ध होता है. अर्थात् जीव और ब्रह्म दो पृथक् हुए, क्यों कि एक तो याद करने वाला और एक वह जिस को याद किया जावे, तथा एक तो ढूंढने वाला, अर्थात् जीव, और दूसरा वह जिसको ढूंढे, अर्थात् ब्रह्म.

नास्तिकः--नहीं जी, जीव और ब्रह्म एक ही हैं. वह अपने आप ही को ढुंढता है.

जैनीः—जो आपही को भुल रहा है वह ब्रह्म काहेका हुआ ?, वह तो निपट ग्रंथल (अज्ञानी) हुआ.

(नास्तिक चुप हो रहा.)

जैनीः—भला ! जीव और ब्रह्म चेतन है वा जड़ ?

नास्तिकः—अजी ! चेतन है.

जैनीः—तो पूर्वोक्त दो चेतन सिद्ध हुए. एक तो ब्रह्म, दूसरा जीव.

नास्तिकः—नहीं जी, ब्रह्म चेतन, और जीव जड़.

जैनीः—यदि जीव जड़ है, तो पूर्वोक्त ब्रह्म को मिलनेका जीव को ज्ञान होना लिखा है, सो कैसे ? और फिर जीव ब्रह्मज्ञानी हो कर ब्रह्म में मिले अर्थात् मुक्त होवे, सो कैसे ?

(नास्तिक चुप हुआ.)

जैनीः—वास्तव में तो तुम्हारा ब्रह्म और मुक्त यह दोनों ही जड़ तुमारे कथन प्रमाण से सिद्ध होते हैं. और नास्तिक शब्द का अर्थ भी यही है, कि होते हुए पदार्थ को जो नास्ति कहे, क्यों कि आनन्दामृत वर्षिणी के

प्रथम अध्याय के अन्त के २५ पृष्ठ में लिखा है, कि ना मोक्ष है और ना जीव है और नाही ईश्वर और नाही और कुछ है. फिर यह नास्तिक ज्ञान२ और मोक्ष२ पुकारते हैं, यथा वालूकी भींत पर चुवारे चिनें और फिर तीसरे अध्याय के सातवें पृष्ठ ७ वीं भूमीका के कथन में लिखते हैं, कि कोई पुरुष नदी के तट पर खड़ा हो कर नगर की ओर दृष्टि करे, तो उसे सारा नगर दीखता है, फिर वह सौ दोसौ कदम जलमें आगे को गया जहां गती तक जल आया, फिर वह वहां खड़ा हो कर देखे, तो ऊंचे मकान तो दीखें परन्तु नीचे के मकान आदिक नगर न दीखें. फिर गले तक जल में गया तो कोई२ शिखर नजर आया, और कुच्छ न दीखा. जब गहरे जलमें डूब ही गया तो फिर कुच्छ भी न देखा. ऐसे ही मोक्ष हो कर संसार नहीं दीखे, अर्थात् संसार मिथ्या है.

जैनीः—देखो! इन नास्तिकों की क्या अच्छी मोक्ष हुई? अरे मतिमन्द! मोक्ष होने वाला डूब गया, कि नगरादिक न रहा? अपितु नगरादिक तो सब कुच्छ वैसे ही रहा, परन्तु वह ही स्वयं डूब गया. फिर छठे अध्याय के ९४ पृष्ठ में लिखा है.

(३)

नास्तिकः—संसार तो स्वप्नवत् झूठा है, परन्तु सोते हुए सत्य, और जागते हुए असत्य; परमार्थ में दोनों ही असत्य हैं.

जैनीः—सोता कौन है? और जागता कौन है? और स्वप्न क्या है? और स्वप्न आता किसको है?

(नास्तिक चुप हो रहा.)

जैनीः—स्वप्न भी तो कुछ देखे वा सुने आदिक का ही आता है, और तुम कहते हो, कि जागते असत्य, तो तुम्हारे पांच तत्व भी तो रहते ही होंगे, और तूं कहनेवाला

और सुननेवाला भी रहता ही होगा, यदि नहीं तो तूं सुनाता क्यों है, और सुनाता किस को है, और सुनने सें क्या लाभ होता है ?

(४)

नास्तिकः—घटाकाश, मठाकाश, महाकाश, यह तीन प्रकार से हमारे मतमें आकाश माने हैं, सो घटवत् शरीरका नाश होने पर महाकाशवत् मोक्ष हो जाता है.

जैनीः—तो यह बताइये कि वह घटवत् शरीर जड है वा चेतन ?

नास्तिकः—जड है.

जैनीः—घटवत् शरीर जड है तो वह बनाये किसने ? और किस लिये बनाये ? क्यों कि तुम चौदहवें पृष्ठ में लिख आये हो कि आत्मा के सिवाय सब अनित्य है. तो वह घडे भी अनित्य ही होंगे, तां ते पुनरपि२ बनाये जाते होंगे.

(नास्तिक चुप हो रहा.)

जैनीः—भला. महाआकाश जड़ है वा चेतन है ?

नास्तिकः—जड़ है.

जैनीः—तो फिर महा आकाशवत् मोक्ष क्या हुआ ? यह तो सत्यानाश हुआ ! इस से तो वे मुक्त ही अच्छे थे, जो कभी ब्रह्मपुरी के कभी चक्रवर्त्त आदिक के सुख तो भोगते. मुक्त हो कर तो तुमारे कथन प्रमाण से सुन्न हो गया, क्यों कि तुम मुक्ति को बुझे हुए दी-पक की भान्ति मानते हो.

(५)

नास्तिकः—एक तो शुद्ध ब्रह्म, एक मायोपहित शुद्ध चेतन, जगत् कारण ईश्वर, एक अविद्योपहित जीव, दूसरे अध्याय के २ए वें पृष्ठ में यह सब अनादि हैं, इनको यों नहीं कहा जाता है, कि यह कबसे हैं ?

जैनीः—तो फिर तुमारा अद्वैत तो भाग गया ! यह तो तीन हुए.

(६)

नास्तिकः-१०९ पृष्ठ में हम आधे श्लोक में कोटि ग्रंथों का सार कहेंगे. क्या 'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या 'बस, ऐसा कहनेवाला जीव ही ब्रह्म है; अपर कोई ब्रह्म नहीं है.

जैनीः—देखो इन नास्तिकों की व्यामोहता (बेहोशी). पहिले तो कह दिया कि ब्रह्म सत्य है और जगत् केवल मिथ्या है, अर्थात् ब्रह्म के सिवाय जीवादिक कुछ भी नहीं. और फिर कहा कि यों कहने वाला जीव ही ब्रह्म है, और कोई ब्रह्म नहीं है. अब देखिये जीव ही को ब्रह्म मान लिया, और ब्रह्म की नास्ति कर दी. असल में इन बेचारे नास्तिकों के ज्ञान नेत्र अज्ञानसे मुंदे हुए हैं, तां ते इन्हें कुच्छ भी नहीं सूझता.

(७)

नास्तिकः-जीव देह के त्याग के अनन्तर पुण्यलोक ब्रह्मपुरी, वा मनुष्य, वा

पशु होते हैं.

जैनीः—तुम तो पूर्वोक्त एक ब्रह्म के सिवाय दूसरा जीव आदिक कुच्छ भी नहीं मानते हो, तो क्या ब्रह्म ही जन्म लेता है? और वह आप ही अनेक रूप हो कर पशु, शूकर, कूकर, (सूअर, कुत्ता,) आदिक योनियों में विष्ठा आदिक चरने की सैरें करता है? बस जी, बस! नास्तिक जी! क्या कहना है? भला यह तो बताओ कि जो घटवत् शरीर जडरूप है वह योनियें भोगता है या उसमें प्रतिबिम्ब रूप ब्रह्म है वह योनियें भोगता है?

(नास्तिक विचार में पडा.)

नास्तिकः—अध्याय छठे के १०० वें पृष्ठ में श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्री शंकराचार्य्य जी महाराज शिवजी का अवतार हस्तामलक आनन्द गिरिसे आदि ले कर बहुत ग्रंथों में हमारा मत प्रसिद्ध है.

जैनीः—ओहो! वही श्री शंकराचार्य्य

हैं कि जिनको आनन्दगिरि शिष्यने अपनी बनाई हुइ पुस्तक शंकर दिग्विजय के ५८ के प्रकरण में लिखा है, कि मण्डक ब्राह्मण की भार्य्या सरस वाणिसें संवाद में मैथुन रस के अनुभव विषय में बाल ब्रह्मचारी होने के कारण से हार गये, कि तुम सर्वज्ञ नहीं हुए हो, क्यों कि आनन्दामृत वर्षिणी में भी लिखा है, कि श्री स्वामी शंकराचार्य्यजीने ८ठे वर्ष को आयु में सन्यास ग्रहण किया था. तो फिर उन्हों ने मरे हुए राजा की देह में प्रवेश कर के राणी से भोग किया, तब सर्वज्ञ हो गये, तां ते फिर सरस वाणि को उसका भेद बता कर विजय को प्राप्त हुए.

तर्कः—क्या तुम्हारे वेदान्तियों में यही सर्वज्ञता होती है ?

(प्रश्न ए)

जैनीः—भला, तुम यह बताओ, कि यदि एक ही आत्मा है तो सोमदत्तका सुख

देवदत्त क्यों नहीं जानता है ?

नास्तिकः—पृष्ठ १०५ वें में अविद्या की उपाधि से जिस शरीर में जिस जगह अध्यास (खयाल) है, वहां के दुःख आदि, अनुभव हो सकते हैं, और जगह के नहीं. यदि दूसरे शरीर में अध्यास होगा, तो उसका भी दुःख सुख होता है, मित्र और पुत्र के दुःख सुख में दुःखी सुखीवत्

जैनीः—वह मन से भले ही सुख दुःख मानें; परन्तु पुत्र के शूल से पिताको शूल नहीं होता है, ताप से ताप नहीं होता.

नास्तिकः—शरीर पृथक्२ (न्यारे२) जो होते हैं.

जैनीः—तो फिर मन भी तो न्यारे२ ही होते हैं.

नास्तिकः—तो देख लो पुत्र के दुःखमें पिताको दुःख होता ही है, तुम ही बताओ, कि कैसे होता है ?

जैनीः—अच्छा हम से ही पूछो, तो हम ही बता देते हैं. रागद्वेष के प्रयोग से दुःख सुख माना जाता है; परन्तु शरीर और मन यह दोनों ही जड़ हैं. जड़ को तो दुःख, सुख का ज्ञान नहीं होता है, दुःख सुख के ज्ञान वाले चेतन (जीव) शरीर में न्यारे२ होते हैं. यदि जड़ को ज्ञान होता, तो मुर्दों को भी ज्ञान होता. और यदि सब का आत्मा एक ही होता, अर्थात् सब में एक ही ब्रह्म होता तो एक दूसरे का दुःख सुख दूसरे को अवश्य ही होता.

(१०)

नास्तिकः—जब यों जाने कि मैं जीव हूं, तब उसको भय होता है; जब यों जाने कि मैं जीव नहीं परमात्मा हूं तब निर्भय हो जाता है.

जैनीः—इस तुमारे कथन प्रमाण से तो यों हुआ, कि जब तक चोर यों जाने कि मैं चोर हूं, तब तक चोरी का भय है, और जब

यों जान ले कि मैं तीन लोक का राजा हूं फिर खूब ही चोरीयां किया करे, कुच्छ भय नहीं. परन्तु नास्तिकजी! वह मन से चाहे राजा हो जावे, परन्तु पकड़ा तो जावेगा.

नास्तिकः—यदि जीव और ब्रह्म में हम भेद मानेंगे, तब तो सब में भेद मानना पड़ेगा.

जैनीः—भेद तो है ही, मानना ही क्या पड़ेगा?

(११)

नास्तिकः—१०७ पृष्ठ में यह संसार इन्द्रजाल है?

जैनीः—इन्द्रजाल भी तो इन्द्रजालिये का किया ही होता है. तो क्या तुम्हारा ब्रह्म इन्द्रजालिया है?

(१२)

नास्तिकः—जैसे तोत्ता तलकी पर लटक कर भ्रम में पड़ जाता है.

जैनीः—वह नलकी किसने लगाई, और भ्रम में कौन पडा ?

नास्तिकः—ब्रह्म ही.

जैनीः—ब्रह्म को तो तुम सर्वज्ञ और सर्वव्यापक मानते हो, तो सर्वज्ञ को भ्रम कैसे ? और पडा कहां ?

नास्तिकः—जैसे मकडी आप ही जाला पुर के आप ही फन्से.

जैनीः—वाहवा ! ब्रह्म तो खूब हुआ! जो आप ही तो कूंआं खोदे और फिर आंख मीच आप ही गिर कर डूब मरे.

(१३)

नास्तिकः—१९२ पृष्ठ में जैसे स्वप्न के खुलते हुए स्वप्न में जो पदार्थ कल्प रखे थे, सब उसही समय नष्ट हो जाते हैं, ऐसे ही पीछे विदेह मुक्ति के सब संसार नष्ट हो जाता है. कोई ऐसा न विचार करे कि मैं तो मुक्त हो जाऊंगा, और मेरे शत्रु मित्रादिक

और जगत् बना रहेगा, और इनके पीछे के लिये यत्न करना मूर्खता है.

जैनीः—देखो इन वेदान्त मतवाले नास्तिकों की बुद्धि कैसे मिथ्यारूप भ्रम चक्र में पड़ रही है? भला, किसी पुरुष को स्वप्न हुआ कि मेरा मित्र मेरे घर आया है, और मैंने उसे सुवर्ण के थाल में बूरा चावल जिमाये हैं, फिर उसकी नींद खुल गई, तो कहो नास्तिकजी! क्या उसके घर का और मित्रादिक का नाश हो गया?

नास्तिकः—नहीं.

जैनीः—तो तुम्हारा पूर्वोक्त लिखा मिथ्या रहा, जो तुमने लिखा है कि स्वप्न के अनन्तर स्वप्नवाले पदार्थ नाश हो जावेंगे.

नास्तिकः—उस समय तो वहां मित्र नहीं रहा, और जो उसने सुवर्ण का थाल अनहुआ स्वप्न में देखा था वह भी न रहा.

जैनीः—अरे मूर्ख! मित्र उस वक्त नहीं

था तो न हो, परन्तु मित्रका नाश तो नहीं हुआ, और जो सोने का थाल अनहुआ देखा था, सो उसके न था, तो जगत् में तो है ? अन हुआ कैसे हुआ ? यह तो मन की चाल और के और भरोसे में विचल जाती है, जैसे कोई पुरुष अपने साईस को कह रहा था कि तुम घोड़ा कस कर लाओ, हम ग्रामान्तर को जावेंगे; इतने में एक कुम्हार गधे ले कर आ गया तो वह शाहूकार कहता है कि तूं इन गधों को परे कर, उधर साईस को देख कर कहता है कि अरे तूं गधे को कस लाय; भला कहीं गधा भी कसवा कर मंगवाया जाता है ? परन्तु संकल्प की चाल और के भरोसे और जगह लग जाती है; यथा कोई पुरुष नौकर को दाम दे कर कहने लगा कि बाजार में से मगज और सेमियें यह२ ले आओ. इतने में उस की लड़की आ कर कहने लगी, कि लालाजी ! देखो भाईने मेरी

गोद में पुरीषोत्सर्ग कर दिया है, मेरे कपड़े विष्ठा से भर गये, उधरसे नौकर पूछ रहा है, कि अजी क्या २ लाऊं, तो वह कहने लगा कि विष्ठा लाओ! ऐसे ही प्राय: स्वप्न में मन के संकल्प भी हुआ करते हैं.

नास्तिक:—तो यह बताओ, कि स्वप्न कैसे आता है ? और कुछ का कुछ क्यों दीखने लग जाता है ?

जैनी:—तुम स्वप्न स्वप्न यों ही पुकारते हो, तुम्हें स्वप्न की तो खबर ही नहीं है. हे भाई! स्वप्न कोई ब्रह्मा तो नहीं दिखाता है, और न कोई स्वप्न में नई सृष्टि ही बस जाती है. और नाही कोई तुम्हारा ब्रह्म अर्थात् जीव, देह से निकल कर कहीं भाग जाता है. स्वप्न तो इन्द्रियों के सो जाने और मन के जागने से आता है. और कुछ का कुछ तो पूर्वोक्त मन के खयाल विचल जाने से दीखता है.

जैनी:—और तुमने यह जो ऊपर लिखा है, कि विदेह मुक्ति अर्थात् जो वेदान्ती ब्रह्मज्ञानी मुक्त हो जाता है; (मर जाता है) तब सब संसार का नाश हो जाता है, सो हम तुमको यों पूछते हैं, कि जो वेदान्ती ब्रह्मज्ञानी मर जाता है, उसका नाश हो जाता है, वा उसके मरते ही सब वेदान्तियों की मुक्ति हो जाती है, अथवा सर्व संसार का प्रलय हो जाता है, अर्थात् मुक्ति (मर जाना) क्यों कि तुम तीसरे अध्याय ६० वें पृष्ठ में लिख आये हो कि, जो अपने आपको ब्रह्म मानता है वह चाहे रो पीट कर मरे, चाहे चंमाल के घर मरे, उसकी अवश्य ही मुक्ति हो जाती है, तो तुम्हारे कथनानुसार उसकी मुक्ति होते ही सब संसारका नाश हो जायगा, इसमें हमें एक तो खुशी हासिल हुई कि वेदान्ती तो बडे२ साधनों से परम हंस बन२ कर मुक्त होंगे, और

उनके मरते ही सब अज्ञानी और पापीयों की स्वयं ही मुक्ति अर्थात् नाश हो जायगा. और तुम्हारे कथनानुसार ऐसे भी सिद्ध होता है, कि जब वेदान्ती उत्पन्न होता है तब संसार बस जाता है, और वेदान्ती जब मर जाता है तब संसार का नाश हो जाता है. परन्तु यह सन्देह ही रहा कि वेदान्ती का पिता, वेदान्ती से पहिले कैसे हुआ? और वेदान्ती की मुक्ति अर्थात् मरणे के अनन्तर वेदान्ती के पुत्र कन्या कैसे रह जाते हैं? ना तो हम लोग आस्तिक आंखों वालों को यों ही मानना पडेगा, कि वेदान्ती को न कभी मोक्ष प्राप्ति हुई और नाही होगी; क्यों कि सब संसार पहिले भी था, और अब भी है, और वेदान्ती के मरण के अनन्तर भी रहेगा.

(२५)

नास्तिकः—भला, जैनीजी! तुमही बताओ, कि जीव चेतन है वा जड़?

जैनीः—चेतन.

नास्तिकः—यदि जीव चेतन है तो जीव को परलोक का ज्ञान अर्थात् स्मरण क्यों नहीं होता ?

जैनीः—जीव को परलोक का ज्ञान अर्थात् स्मृति के न होने से क्या जीव की चेतनता की और परलोक की नास्ति हो जायगी ?

नास्तिकः—और क्या ?

जैनीः—किस कारण से ?

नास्तिकः—किस कारण से क्या? यदि जीव चेतन अर्थात् ज्ञानवान् होता, और परलोक से आता जाता, तो परलोक का स्मरण (याद) क्यों कर न होता ?

जैनीः—अरे भोले ! तुझे गर्भवास की अवस्था स्मरण नहीं है, तो क्या तुम गर्भ से उत्पन्न नहीं हुए हो? वा, तुम चेतन नहीं

हो ! जरू हो ? (२) तुम्हें माता के दुग्ध का स्वाद याद नहीं है तो क्या माता का दूध पी कर नहीं पले हो? (३) यथा, किसी पुरुष ने विद्या पढी, फिर दो–चार वा ८ महीने तक बीमार रहा, उसे पिछला पढा हुआ स्मरण न रहा, तो क्या उसने पढा न था ? (४) अथवा, किसी पुरुषने कैद में कठिन वेदना भोगी, फिर वह कैद से छूट कर घर के सुखों में मग्न हो कर कैद के कष्ट भूल गया; तो क्या उसने कैद नहीं भोगी ? (५) अथवा, स्त्री प्रसववेदना से दुःखित होती है, फिर कालान्तर में शृङ्गार भूषण हास्य विलास आदि भोगों में मग्न हो कर प्रसूत की अवस्था भूल गई, तो क्या उसको प्रसूत की पीमा नहीं हुई? किंवा यह पूर्वोक्त जरू हो जाते हैं? अपितु नहीं, तो ऐसे ही जीव चेतन के परलोक याद ना रहने से परलोक की नास्ति नहीं हो सकती।

नास्तिकः—यह तो आपने सत्य कहा, परन्तु यह बता दीजिये कि ना याद रहने का कारण क्या है ?

जेनीः—अरे भाई ! यह जीव चेतन कर्मों से पूर्वोक्त समवाय सम्बन्ध है, तां ते इन जीवों की चेतनता, अर्थात् ज्ञान शक्तियें सूक्ष्म रूप ज्ञान, आवरण आदि कर्मानुबंध हो रही हैं, वृक्ष के बीज की न्याईं. जैसे वृक्ष के बीज में वृक्ष वाली सर्व शक्तियें सूक्ष्म हो कर रही हुई हैं, और निमित्तों के मिलने से उसी बीजमें से किसी काल में अङ्कुर फूट कर डाली, पत्ते आदी होते हुए संपूर्ण वृक्ष प्रकट हो जाता है; ऐसे ही इन जीवों को इन्द्रिय और मन आदि प्राणों के निमित्तों से मति, सुरत, आदि ज्ञान प्रगट होते हैं. जब तक यह जीव कर्मों के बंधन सहित है, तब तक विना इन्द्रिय आदिक औजारों के कोई ज्ञान

उपकर्म आदि क्रिया नहीं कर सकता है. जैसे मनुष्य को सीवना तो आता है परन्तु सूई बिन नहीं सी सकता, इत्यादि. और भी बहुतसे दृष्टान्त हैं.

(१७)

नास्तिकः—यह इन्द्रिय शरीर पांच तत्व से होते हैं.—(१) पृथिवी, (२) जल, (३) अग्नि, (४) वायु, (५) आकाश. इन तत्वों ही के मिलने से ज्ञान हो जाता है वा और कोई जीव होता है?

जैनीः—देखो, इन अंधमति नास्तिकों के आगे सत्य उपदेश करना कुक्कुडं कूंवत् है. अरे भाई! यह पूर्वोक्त पांच तत्व तो जड हैं. इन जडों के मिलाप से जड गुण तो उत्पन्न हो जाता है. परन्तु जडों में चेतन गुण अन हुआ कहांसे आवे? जैसे हल्दी और नील के मिलाप से हरा रंग हो जाता हैं, जिस को

अज्ञान लोग तीसरा हरा रंग कहते है. परन्तु बुद्धिमान् पुरुष जानते हैं कि तीसरा नहीं, दो ही हैं. हल्दी का पीलापन, और नील का नीला पन, यह दोनों ही रङ्ग मिले हुए हैं. हरेमें तीसरा रङ्ग, इनसे पृथक् लाली तो नहीं आ गई, अर्थात् गुल अनारी तो नहीं। हो गया. ऐसे ही जड़ में जड़ गुण, तो जातिर के हो जाते हैं, परन्तु जड़ में जड़ से अलग चेतन गुण नहीं हो सकता.

(१८)

नास्तिकः—(१) शोरा, (२) गंधक, (३) कोयला मिलाने से बारूद हो जाती है, जिस में पहाड़ों के उड़ाने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है.

जैनीः—बारूद में उड़ाने की शक्ति होती तो, कोठे में पड़ीर ही उड़ा देती, उड़ाना तो बारूद से अलग अग्नि से होता है.

नास्तिकः—खैर, अग्नि से ही सही. परन्तु जैनी जी ! अग्नि भी तो जड़ है.

जैनी:—अग्नि जड़ ही सही, परन्तु नास्तिक जी ! मिलाने वाले चलाने वाला तो चेतन ही है. तांते जड़ से न्यारा चेतन कोई और ही है.

(१९)

नास्तिकः—भला ! शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श, ग्रहण करने की शक्ति इन्द्रियों में है वा जीव में, अर्थात् देखने का गुण आंखों में है वा जीव में ?

जैनीः—जब तक जीव अज्ञान कर्म के अनुबंध है, तब तक तो न अकेला जीव देख सकता है और नाही आंख देख सकती है; क्यों कि यदि जीव देख सकता, तो अन्ध पुरुष भी चक्षु से विना ही देख सकता, और जो आंखें देख सकती तो जीव निकल जाने

के अनन्तर अर्थात् मुर्दा भी देख सकता. क्यों कि मुर्दे की भी तो अल्पकाल तक वैसी ही आंखें बनी रहती हैं. बस वही ठीक है जो हम ऊपर लिख चुके हैं, कि कर्म अनुबन्ध जीव इन्द्रियों के निमित्त से अर्थात् जीव इन्द्रिय इन दोनों के मिलाप से देखने आदि की क्रिया सिद्ध होती है.

(७०)

नास्तिकः—अजी! मैं आपसे फिर पूछता हूं कि कर्मानुबन्ध जीव परलोक आदि पूर्व कृत कैसे भूल जाता है? कोई दृष्टान्त देकर सविस्तर समझा दीजिये.

जैनीः—दृष्टान्त तो हम पहिले ही पांच लिख आये हैं. लो अब और भी विस्तार पूर्वक सुनो. यथा, राजग्रह नगर में किसी एक धनी पुरुष शिवदत्त के पुत्र देवदत्त को कुसङ्ग के प्रयोगसे मद्यपान करने का व्यसन पड़

गयाथा, एक समय मद्यपान कर बाजार में से जा रहा था, तो उसके मित्र ने उसे अपनी दुकान पर बैठा लिया, और मोदक वा पेंड़े आदिक खिलाये. उसने आदरका और मिठाई आदि खानेका अपने मन में अति सुख माना. फिर आगे गया तो उसे किसी एक पुरुष ने पूछा कि आज तो तुम्हें मित्र ने खूब लड्डू खिलाये, तो उस मद्यपने जब वर्त्तमान समय लड्डू आदिक खाये थे तब उसकी चेतनता अर्थात् बुद्धि जिस धातु (मगज़) से काम ले रही थी अर्थात् मित्र के सत्कार को अनुभव कर रही थी, सो उस धातु (मगज) के मादेपर उस मदिरा के पुद्गल (जौहर) मेदकी गर्मी से उड कर मगज की धातु को रोकते थे, तां ते वह अपने अतीत काल की व्यतीत बात को स्मरण नहीं रख सकता था, तांते वह पूर्वोक्त सुखों को भूला हुआ यों बोला, कि मुझे किस ऐसे तैसे ने लड्डू खिला-

ये हैं? फिर आगे उस एक शत्रू मिला, उसने उसके खूब जूते लगाये; वह मारसे दुःखित हुआ, और चिल्लाने लगा, और बमी लज्जा-को प्राप्त हुआ. फिर थोमी देर के बाद आगे चल कर किसी पुरुष ने कहा कि तेरे शत्रुने तुझे बहुत जूते लगाये तो वह पूर्वोक्त कारण से अपने बीते दुःख को भूल ही रहा था, तो तेयों बोला, कि मेरे जूते लाने वाला कौन जन्मा है? अब देखो, वह मद्यपायी पुरुष वर्त्तमान काल में तो सुख को सुख जानता था और दुःख को दुःख, परन्तु मदिरा के जौहर मगज पर लगने से अतीत, अनागत के सुख दुःख को याद नहीं रख सका ऐसे ही पुरुष वत् तो यह जीव, और मदिरावत् मोह कर्म के परमाणु, सो इस मोह कर्म के प्रयोग से यह जीव भी जब वर्त्तमान काल जिस यो-नि में होता है तब वहां के सुख दुःख को जानता है. और जब इस देह को छोम कर दू-

सरी योनि में कर्मानुसार उत्पन्न होता है तब पूर्वोक्त कारण से परलोक को भूल जाता है. और जियादह शरीर और जीव के न्यारा२ होने में ज्ञात होने की आवश्यकता हो तो सूत्र श्री रायप्रसैनी जी के दूसरे अधिकार में परदेशी राजा नास्तिक के ग्यारह प्रश्न और श्री जैनाचार्य्य केशी कुमारजी आस्तिक की ओरसे उत्तरों में से प्राप्ति कर लेना; इस जगह पुस्तक बड़ा होने के कारण से विशेष कर नहीं लिखा गया.

और हमारी तर्फ से यह शिक्षा भी स्मरण रखने के योग्य है कि यदि तुमारी बुद्धि में परलोक नहीं भी आवे तौ भी परलोक अवश्यही मानो, क्यों कि जो परमेश्वर और परलोक को नहीं समझेगा अर्थात् नहीं मानेगा, तो वह पापों से अर्थात् बालघात आदि अगम्य गमनादि कुकर्मों से कभी नहीं बच

सकेगा; यथा किसी कवी ने कैसा ही सुन्दर दोहा कहा हैः—

परमेश्वर परलोक को नय कहीं जिस चित्त,
गुह्य देशमें पाप सों कबहूं नवचसी मित्त १

तां ते परमेश्वर और परलोक पर निश्चय करके हिंसा, मिथ्या, काम क्रोधादि पूर्वोक्त दुष्ट कर्मों का अवश्य ही त्याग, करना चाहिये, और दया, सत्य, परोपकार आदि सत्य धर्म का अवश्य ही अनुष्ठान करना चाहिये; क्यों कि यदि परलोक होगा तो शुन्न के प्रन्नाव से इस लोक में तो यश होगा और विविध प्रकार के रोग और कलंक और राज दण्डादिकों से बचा रहेगा, और परलोक में शुन्न गति हो कर अत्यन्त सुखी होगा; यदि परलोक तेरी बुद्धि के अनुसार नहीं न्नी होगा तौ न्नी धर्म के प्रयोग से इस जगह तो यश आदिक पूर्वोक्त सुख होगा.

यदि ज्ञाता जनों की सम्मति से विरुद्ध कुछ न्यूनाधिक लिखा गया होवे तो 'मिच्छामि दुःकडम्'

॥ शुभं भूयात् ॥

नोटः—इस ग्रंथ मे जो मत मतान्तरोंके पुस्तको के प्रमाण दिये गये हैं, यदि उनका अर्थ इस ग्रंथ मे कहीं लिखे के बमूजिब न हो तो वह अपना अर्थ प्रकट करे ठीक किया जायगा.

ॐ श्री वीतरागाय नमः॥

॥ जैन धर्मके नियम ॥

१—परमेश्वर के विषय में ।

१ परमेश्वर को अनादि मानते हैं अर्थात् सिद्धस्वरूप, सत्चिदानंद, अज, अमर, निराकार, निष्कलङ्क, निष्प्रयोजन, परमपवित्र सर्वज्ञ, अनन्त शक्तिमान् सदासर्वानन्दरूप परमात्मा को अनादि मानते हैं ॥

२—जीवों के विषय में ।

२—जीवोंको अनादि मानते हैं अर्थात् पुण्य पाप रूप कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता संसारी अनन्त जीवोंको जिनका चेतना लक्षण है अनादि मानते हैं ॥

३—जगत के विषय में ।

३—जड़ परमाणुओं के समूह रूप लोक (जगत्) को अनादि मानते हैं अर्थात् पृथिवी, पानी, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्यादि पुद्गलों के स्वभावसे

समूह रूप जगत् १ काल (समय) २ स्वभाव (जड़ में जड़ता चेतनमें चैतन्यता) ३ आकाश (सर्व पदार्थों का मकान) ४ इन को प्रवाह रूप अकृत्रिम (बिना किसी के बनाये) अनादि मानते हैं ॥

४—अवतार ।

४—धर्मावतार ऋषीश्वर वीतराग जिन देव को जैन धर्म का बताने वाला मानते हैं अर्थात् जि, धातु, जय, अर्थ में है जिसको नक प्रत्यय होने से जिन, शब्द सिद्ध होता है अर्थात् राग द्वेष काम क्रोधादि शत्रुयों को जीत के जिन देव कहाये, जिनस्यायं, जैन, अर्थात् जिनेश्वर देव का कहा हुआ यह धर्म उसे जैन धर्म कहते है ॥

५—जैनी ।

५—जैनी मुक्ति के साधनों में यत्न करने वालो को मानते हैं अर्थात् उक्त जिनेश्वर देव के कहे हुये जैन धर्म में रहे हुये अर्थात् जैन धर्म के अनुयाईयों को जैनी कहते हैं ॥

६—मुक्ति का स्वरुप ।

६—मुक्ति, कर्म बंध से अबन्ध हो जाने अर्थात् जन्म मरण से रहित हो परमात्म पदको प्राप्त

कर सर्वज्ञता, सदैव सर्वानन्द में रमन रहने को मानते हैं अर्थात् मुक्ति के साधन धन और कामनी के त्यागी सत्त गुरुयोंकी, सङ्गत करके शास्त्र द्वारा जरू चेतन का स्वरुप सुनकर संसारिक पदार्थों को अनित्य [झूठे] जान कर उदासीन होकर सत्य संतोष दया दानादि सुमार्ग में इच्छा रहित चल कर काम क्रोधादि पर गुन के अभाव होने पर आत्म ज्ञान में लीन होकर सर्वारंभ परित्यागी अर्थात् हिंसा मिथ्या दि के त्याग के प्रयोग से नये कर्म पैदा न करे और पुरःकृत [पहिले किये हुये कर्मों का पूर्वोक्त जप तप ब्रह्मचर्यादि के प्रयोग से नाश कर के कर्मों से अलग होजाना अर्थात् जन्म मरण से रहित होकर परमपवित्र सच्चिदानन्द रूप परमपदको प्राप्त हे ज्ञान स्वरूप सदैव परमानन्द में रमन रहने को मोक्ष मानते हैं.

७—साधुयों के चिन्ह और धर्म ।

७-पञ्चयम (पांचमहाव्रत के) पालने वालों को साधु कहते हैं.

अर्थात् श्वेत वस्त्र, मुख वस्त्रिका मुखपर बांधना,एक ऊन आदिक का गुच्छा (रजोहरण) जीव

रक्षा के लिये हाथ में रखना काष्ठ पात्र में आर्य गृहस्थियों के द्वार से निर्दोष भिक्षा ला के आहार करना.

पूर्वक ५ पञ्चाश्रव हिंसा १ मिथ्या २ चोरी ३ मैथुन ४ ममत्व ५ इनका त्यागन

और अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्याऽ परिग्रह- यमाः इन उक्त (पञ्च महाव्रतों के) धारण करना अर्थात् दया १ सत्य २ दत्त ३ ब्रह्मचर्य ४ निर्ममत्व ५ दया, (जीवरक्षा अर्थात् स्थावरादि कीटी से कु- ञ्जर पर्य्यंत सर्व जीवों की रक्षा रूप धर्म में यत्न का करना. १ सत्य (सच्च बोलना) २ दत्त (गृहस्थियों का दिया हुआ अन्न पानी वस्त्रादि) निर्दोष पदार्थ का लेना ३ ब्रह्मचर्य [हमेशा यती रहना] अपितु स्त्री को हाथ तक भी न लगाना जिस मकान में स्त्री रहती हो उस मकान में भीन रहना ऐसे ही साध्वी को पुरुष के पक्ष में समझ लेना ४ निर्ममत्व [कौडी पैसा आदिक धन, धातु का किंचित् भी न रखना ५ रात्रि भोजन का त्याग अर्थात् रात्रि में न खाना न पीना रात्रिके समय में अन्न पानी आ- दिक खान पान के पदार्थ का संचय भी न करना

[न रखना] और नङ्गेपांव भूमि शय्या, तथा काष्ठ शय्या का करना. फलफूल आदिक और सांसारिक विषय व्यवहारों से अलग रहना, पञ्च परमेष्ठी का जाप करना धर्म शास्त्रों के अनुसार पूर्वोक्त सत्य सार धर्म रीति को ढुंरूकर परोपकार के लिये सत्यो- पदेश यथा बुद्धि करते हुए देशांतरो में विचरते रहना एक जगह मेरावना के मुकाम का न करना ऐसी वृत्ति वालों को साधु मानते हैं ॥

८—श्रावक (शास्त्र सुनने वाले) गृहस्थियों का धर्म ।

८—श्रावक पूर्वोक्त सर्वज्ञ भाषित सूत्रानुसार सम्यग् दृष्ट में दृढ हो कर धर्म मर्यादा में चलने वालों को मानते हैं अर्थात् प्रातःकाल में परमेश्वर का जाप रूप पाठ करना अभयदान, सुपात्रदान का देना सायंकालादि में सामायक का करना झूठका न वोलना, कम न तोलना झूठी गवाही का न देना चोरी का न करना, परस्त्री का गमन न करना स्त्री- योंने परपुरुष को गमन न करना अर्थात् अपने पतिके परन्त सब पुरुषो को पिता बंधु के समतुल्य समझना जूए का न खेलना, मांस का न खाना,

शराब का न पीना, शिकार (जीव घात) का न करना इतना ही एही वदिक मांस खाने, शराब पीने वाले शिकार (जीव घात) करने वाले को जाति में भी न रखना अर्थात् उस्के सगाई (कन्यादान) नही करना उसके साथ खानपानादि व्यवहार नहीं करना खोटा वाणिज्य न करना अर्थात् दारू, चाम, जहर, शस्त्र आदिक का न वेचना और कसाई आदिक हिंसकों को व्याज पै दाम तक का भी न देना क्यूं कि उनकी दुष्ट कमाई का धन लेना अधर्म है ॥

ए—परोपकार ।

ए—परोपकार सत्य विद्या (शास्त्रविद्या) सीखने सिखाने पूर्वोक्त जिनेन्द्र देव भाषित सत्य शास्त्रोक्त जड़ चेतन के विचार से बुद्धिको निर्मल करने में जीव रक्षा सत्य भाषणादि धर्म में उद्यम करने को कहते हैं अर्थात् यथा.

दोहा-गुणवंतोकी वंदना, अवगुण देख मध्यस्थ।
दुखी देख करुणा करे मैत्रीभाव समस्त ॥१॥

अर्थ-पूर्वोक्त गुणोंवाले साधु वा श्रावकों को नमस्कार करे और गुण रहित से मध्यस्थ भाव रहे अर्थात् उसपर राग द्वेष न करे २ दुखियों को देख

के करुणा (दया) करे अर्थात् अपना कल्प धर्म रख के यथा शक्ति उनका दुःख निवारण करे ३ मैत्री भाव सबसें रक्खे अर्थात् सब जीवों से प्रियाचरण करे किसी का बुरा चिंते नहीं। ॥ ४ ॥

१०—यात्रा धर्म ॥

१०—यात्रा चतुर्विध संघ तीर्थ अर्थात् (चार तीर्थों) का मिल के धर्म विचार का करना उसे यात्रा मानते हैं अर्थात् पूर्वोक्त साधु गुणों का धारक पुरुष साधु १ तैसे ही पूर्वोक्त साधु गुणोंकी धारका स्त्री साध्वी २ पूर्वोक्त श्रावक गुणोंका धारक पुरुष श्रावक ३ पूर्वोक्त श्रावक गुणों की धारका स्त्री श्राविका ४ इनका चतुर्विध संघ तीर्थ कहते हैं इनका परस्पर धर्म प्रीति से मिल कर धर्म का निश्चय करना उसे यात्रा कहते हैं और धर्म के निश्चय करने के लिये प्रश्नोत्तर कर के धर्म रूपी लाभ उठाने वाले (सत्य सन्तोष हासिल करने वालों) को यात्री कहते हैं अर्थात् जिस देश काल में जिस पुरुष को सत्त संगतादि करके आत्मज्ञान का लाभ हो वह तीर्थ। यथा चाणक्य नीति दर्पण अध्याय १२ श्लोक ८ में:—

साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थ भूताहि साधवः ।
कालेन फलते तीर्थं, सद्यः साधु समागमः ॥

अर्थ—साधु का दर्शन ही सुकृत है साधु ही तीर्थ रूप हैं तीर्थ तो कभी फल देगा साधुओं का संग शीघ्र ही फलदायक हैं १ और जो धर्म सभा में धर्म सुनने को अधिकारी आवे वह यात्री २ और जो धर्म प्रीति और धर्म का वधाना अर्थात् आश्रव का सम्वर का वधाना (विषयानन्द को घटाना आत्मानन्द को वधाना) यह यात्रा ३ इन पूर्वोक्त सर्व का सिद्धान्त (सार) मुक्ति है अर्थात् सर्व प्रकार शरीरी मानसी दुःख से छूटकर सदैव सर्वज्ञता आत्मानन्द में रमता रहे ॥

॥ इति दशनियमः ॥ शुभम् ॥